यजुर्वेद - सूक्ति - सुधा



✧ ओ३म् ✧

यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा

संकलनकर्त्ता एवं भाष्यकार
परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती



गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक :
गोविन्दराम हासानन्द
आर्य साहित्य भवन,
४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

प्रथम संस्करण : मई, १९७९

मूल्य : ३·००

मुद्रक :
अजय प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

भूमिका

वेद वह दिव्य ज्ञान है जो परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए प्रदान किया था। वेद सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। वेद ज्ञान के अगाध भण्डार हैं। महर्षि मनु के शब्दों में—

सर्वं ज्ञानमयो हि सः ॥—मनु० २।७

वेद विविध ज्ञान का, सब प्रकार के ज्ञान का अक्षय कोष है।

वेद में सभी धर्मों=कर्तव्य-कर्मों का भी सविस्तर वर्णन और प्रतिपादन है—

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ॥—मनु० २।६

वेद अखिल धर्म के मूल स्रोत [Fountain head of Religion] हैं।

वेद चार हैं—ऋग्यजुः, साम और अथर्व। ऋग्वेद ज्ञानकाण्ड है और यजुर्वेद कर्मकाण्ड है। यजुर्वेद में दर्शपौर्णमास, ज्योतिष्टोम, अश्वमेध, सर्वमेध, पुरुष-मेध आदि नाना प्रकार के यज्ञों का वर्णन और विवेचन है। मध्ययुग में इन यज्ञों के वास्तविक रहस्य को न जानने के कारण कुछ अज्ञानियों ने इन यज्ञों में पशुवध और मनुष्यवध तक की भी कल्पना कर डाली। वस्तुतः जो वेद—

गां मा हिं॑सीः ॥—यजु० १३।४३

गाय को मत मारो।

मा हिं॑सीरेकशफं पशुम् ॥—१३।४८

एक खुरवाले [घोड़े आदि] पशुओं को मत मारो।

ऐसे स्पष्ट आदेश दे रहा है, उस वेद में पशु-हिंसा अथवा मनुष्य-हिंसा का विधान बताना अज्ञान के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

अश्वमेध का वास्तविक अर्थ क्या है? सुनिए—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः ॥—शत० १३।१।६।३

न्यायपूर्वक राज्य का पालन करना, शिक्षा, कल-कारखाने, उद्योग-धन्धों के द्वारा राष्ट्र की श्रीवृद्धि और समुन्नति का नाम 'अश्वमेध' है, घोड़े को मारकर हवन करने का नाम अश्वमेध नहीं है।

नरमेध का अर्थ है, मरने के पश्चात् पुष्कल घी-सामग्री आदि द्रव्यों के द्वारा मृतक का दाह-संस्कार करना ।

पुरुषमेध का अर्थ है, सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा परमात्मा का अपने अन्तरात्मा में साक्षात्कार करना ।

वेद की शिक्षाएँ अत्यन्त उदात्त एवं महान् हैं। जिस समय वाल्तेयर (Voltair) महोदय को यजुर्वेद की एक प्रति भेंट की गई तो उसने कहा था—

For this valuable gift West will be ever indebted to the East.

इस बहुमूल्य भेंट के लिए पाश्चात्य जगत् भारत का सदा ऋणी रहेगा ।

आदर्शराष्ट्र [२२।२२] का चित्रण, मनोविज्ञान [३४।१-६] का विस्तार-पूर्वक वर्णन, मानवमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार [२६।२], ब्रह्मोद्य ऋचाएँ=आध्यात्मिक प्रश्नोत्तर [२३।४५-६२] ईशोपनिषद्, [४०वाँ अध्याय] इस वेद के सर्वाधिक देदीप्यमान रत्न हैं।

हमने अनेक बार यजुर्वेद का अध्ययन कर इसकी सूक्तियों=उत्तम वाक्यों, सुभाषितों का यह संकलन तैयार किया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेद-भाष्य से इस विषय में विशेष सहायता ली है ।

इन सूक्तियों को स्वयं पढ़िए, अन्यों को पढ़ने की प्रेरणा कीजिए। अपने पुत्र और पुत्रियों के हाथों में उत्तम साहित्य दीजिए ।

सूक्ति के अन्त में दी हुई संख्या अध्याय और मन्त्र की सूचक है; जैसे २६।२ का अभिप्राय है यजुर्वेद के २६वें अध्याय का दूसरा मन्त्र ।

अन्य दो वेदों की सूक्तियाँ भी हम शीघ्र ही पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे ।

शुभ कामनाओं सहित
जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद सदन,
एच १/२ माडल टाउन
दिल्ली-११०००९
२४-५-७९

यजुर्वेद सूक्ति-सुधा

१. इषे त्वोर्जे त्वा ।—१।१

हे अनन्त पराक्रमयुक्त आनन्दघन परमेश्वर ! हम अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों, विज्ञान, बल, पराक्रम और उत्तम रसों की प्राप्ति के लिए सब प्रकार से आपका आश्रय लेते हैं ।

२. वायवः स्थ ।—१।१

हे मनुष्यो ! तुम गतिशील, कर्मयोगी और उद्योगी बनो ।

३. देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे ।—१।१

सर्वजगदुत्पादक, सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त, सर्वसुखदाता और सब विद्याओं को प्रसिद्ध करनेवाला परमेश्वर तुम और हम सबको अत्युत्तम, सर्वोपकारक, शुभ यज्ञादि कर्मों में संयुक्त करे ।

४. आप्यायध्वमघ्न्याः ।—१।१

हे गाओ ! तुम खूब बढ़ो, हृष्ट-पुष्ट बनो ।

५. मा वस्तेन ईशत माघशँ्सः ।।—१।१

हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से चौर्य और पाप का प्रशंसक या पापी हम-पर शासन न करे अथवा पापी और चोर हममें उत्पन्न न हों ।

६. यजमानस्य पशून् पाहि ।—१।१

हे सर्वसुखदाता परमेश्वर ! आप आस्तिक और सर्वोपकारक धर्म का सेवन करनेवाले मनुष्य के गौ, घोड़े, हाथी आदि पशु तथा लक्ष्मी=धन-सम्पत्ति और प्रजा की निरन्तर रक्षा कीजिए । अथवा, हे प्रभो ! आत्मारूपी यजमान के इन्द्रियरूपी पशुओं की रक्षा कीजिए ।

७. वसोः पवित्रमसि ।—१।२

हे परमेश्वर ! तू मानव-जीवनों का शोधक है, सुप्रेरणा द्वारा मानवों को सुमार्ग पर चलाकर उनके जीवनों को पवित्र करनेवाला है ।

८. द्यौरसि पृथिव्यसि ॥—१।२

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू सूर्य आदि सभी लोकों का प्रकाशक और सबका आश्रय है ।

९. मातरिश्वनो घर्मोसि ।—१।२

हे प्राणस्वरूप परमेश्वर ! तू प्राणों की उष्णता है ।

१०. विश्वधा असि ।—१।२

हे सर्वाधार ! तू अखिल ब्रह्माण्ड का धारक है ।

११. मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥—१।२

हे परमेश्वर ! तू हमें मत त्याग और हम यजमान भी कभी तुझसे वियुक्त न हों, कभी तेरा त्याग न करें ।

१२. देवस्य त्वा सविता पुनातु ।—१।३

हे मानव ! स्वयं प्रकाशस्वरूप, सर्वजगदुत्पादक परमेश्वर तुझे पवित्र करे ।

१३. सा विश्वायुः ।—१।४

वह परमेश्वरी शक्ति सारे संसार का जीवन है ।

१४. सा विश्वकर्मा ।—१।४

वह परमेश्वरी शक्ति विश्व का निर्माण करनेवाली है ।

१५. सा विश्वधायाः ।—१।४

वह परमेश्वरी शक्ति विश्व का धारण और पोषण करनेवाली है । अथवा वेदवाणी सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करनेवाली है ।

१६. विष्णो हव्यँ् रक्ष ।—१।४

हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! यज्ञ-सम्बन्धी देने और लेने योग्य द्रव्य तथा विज्ञान की निरन्तर रक्षा कीजिए । अथवा आत्मसमर्पक-उपासक, शरणागत की रक्षा कीजिए ।

१७. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि ।—१।५

हे सत्योपदेशक परमेश्वर ! मैं व्रत=दुर्गुण-त्याग और सद्गुण-ग्रहण का अनुष्ठान, पालन और आचरण करूँगा ।

१८. अहमनृतात्सत्यमुपैमि ।—१।५

मैं असत्य को त्यागकर वेदविद्या, प्रत्यक्षादि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों के सत्संग, श्रेष्ठ विचार और आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम,

सर्वहित, सुपरीक्षित सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना=रूप व्रत को अपने जीवन में धारण करता हूँ।

१९. कस्त्वा युनक्ति।—१।६

हे जीव! तुझे शुभ कर्मों के अनुष्ठान में कौन नियुक्त करता है? तुझ आत्मा को शरीर के साथ कौन संयुक्त करता है? उत्तर—प्रजापति परमेश्वर।

२०. स त्वा युनक्ति।—१।६

ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमेश्वर मनुष्य को शुभ कर्मों में प्रेरित करता है और वही जगदीश्वर आत्मा को शरीर के साथ संयुक्त करता है।

२१. कस्मै त्वा युनक्ति।—१।६

वह परमात्मा मुझ और तुझको—सब जीवों को किस प्रयोजन के लिए नियुक्त करता है?

२२. तस्मै त्वा युनक्ति।—१।६

वह परमेश्वर यज्ञ के अनुष्ठान, सत्यव्रत के आचरण और आनन्दस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति के लिए मुझे और तुझे—सब जीवों को शरीर के साथ संयुक्त करता है।

२३. प्रत्युष्टँ् रक्षः।—१।७

मैं दुर्गुणी और दुष्ट स्वभाववाले मनुष्यों को दूर करूँ।

२४. प्रत्युष्टा अरातयः।—१।७

मैं जो दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं, उन्हें निर्मूल करूँ।

२५. उर्वन्तरिक्षमन्वेमि।—१।७

मैं सुख को सिद्ध करनेवाले उत्तम स्थान=मोक्ष और अपार सुख को प्राप्त करूँ अथवा मैं विशाल हृदयरूपी अन्तरिक्ष में परमात्मा को प्राप्त करूँ; अथवा मैं अपनी उन्नति के लिए विशाल क्षेत्र चाहता हूँ; अथवा मैं विशालहृदयता को प्राप्त हो रहा हूँ।

२६. धूरसि धूर्व धूर्वन्तम्।—१।८

हे विद्यासम्पन्न पुरुष! तू दोषों और अज्ञान-अन्धकार का नाशक है। तू द्वेषी, छली, कपटी, हिंसक और काम-क्रोधादियुक्त मनुष्य को ताड़ना दे।

२७. योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व।—१।८

हे विद्वन्! जो छली-कपटी, धर्मात्माओं को दुःख देता है, आप उसे ताड़ना दीजिए।

२८. तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ।—१।८

हम विद्वान्‌जन जिन काम-क्रोधादि दुर्गुणों और अदानशीलता आदि का नाश करते हैं, हे मानव ! तू भी उन्हें नष्ट कर ।

२६. अह्रुतमसि ।—१।६

हे शिष्य ! तू कुटिलतारहित है । तू शुद्ध और विकाररहित है ।

३०. हविर्धानं दृँ्‌हस्व ।—१।६

हे शिष्य ! तू अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट, दृढ़ एवं शक्तिशाली बना ।

३१. अपहतँ्‌ रक्षः ।—१।६

राक्षसों, राक्षसी भावों और पाप-वासनाओं को दूर करो ।

३२. भूताय त्वा नारातये ।—१।१०

हे मानव ! तुझे संसार में प्राणियों को सुख प्रदान करने और दारिद्र्य आदि दोषों का नाश करने के लिए भेजा गया है । तू अदानशील मत बन, अपितु प्राणियों के हित के लिए अपना सर्वस्व लुटा दे ।

३३. स्वरभिविख्येषम् ।—१।११

मैं सब ओर परमात्मा के तेज और आनन्द को निरन्तर देखूँ, प्राप्त करूँ ।

३४. दृँ्‌हन्तां दुर्याः पृथिव्याम् ।—१।११

इस विशाल पृथिवी पर मनुष्यों के घर, उनमें रहनेवाले जन शुभ गुणों और सुख से वृद्धि को प्राप्त हों ।

३५. पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामि ।—१।११

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! मैं आपको पृथिवी[1]=शरीर के नाभौ[2]=बीच में अर्थात् हृदय में स्थापित करता हूँ ।

३६. अग्ने हव्यँ्‌ रक्ष ।—१।११

हे तेजस्वरूप प्रभो ! मेरे जीवन-हवि की रक्षा कर । अथवा, हे ज्ञानिन् ! तू देने और ग्रहण करने योग्य अन्न आदि की रक्षा कर ।

३७. इममद्य यज्ञं नयताग्रे ।—१।१२

हे मनुष्यो ! इस जीवन-यज्ञ को आज ही, वर्तमान काल में ही आगे बढ़ाओ, शम-दम आदि श्रेष्ठ गुणों से जीवन-यज्ञ को अलंकृत करो ।

---

१. पृथिवी शरीरम् । अथर्व० ५।६।७, २. नाभौ=मध्ये—दयानन्द

३८. यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये ।—१।१३

हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम सब जीवन-संग्राम में परमैश्वर्यशाली परमेश्वर का वरण करो ।

३९. अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ।—१।१३

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति के लिए मैं प्रीति से सेवन करने योग्य यज्ञ का सेवन करता हूँ ।

४०. दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम् ।—१।१३

श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादन के लिए अपने-आपको शुद्ध करो; अपने जीवन को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनाओ ।

४१. शर्मासि ।—१।१४

हे मनुष्यो ! तुम्हारा घर सुख देनेवाला हो ! अथवा, हे राजन् ! तू प्रजा के लिए घर के समान सुखदायक है ।

४२. अवधूतँ रक्षः ।—१।१४

हे मनुष्यो ! अपने घरों से दुष्ट-स्वभाववाले प्राणी, काम-क्रोध आदि दुष्ट-स्वभावयुक्त मनुष्यों को दूर करो, पाप को=पापमय जीवन को समाप्त करो ।

४३. अवधूता अरातयः ।—१।१४

दान-धर्मरहित शत्रु हमारे घरों से दूर हों ।

४४. ग्रावासि ।—१।१४

हे मानव ! अपनी शक्ति को पहचान ! तू शिला के समान दृढ़ और शत्रुओं को चकनाचूर करनेवाला है ।

४५. अग्नेस्तनूरसि ।—१।१५

हे मानव ! तू आत्मज्योति का विस्तार करनेवाला है ।

४६. हविः शमीष्व ।—१।१५

हे मनुष्यो ! यज्ञ के द्रव्यों को, यज्ञ-सामग्री के पदार्थों को अच्छी प्रकार शुद्ध करो ।

४७. कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वः ।—१।१५

हे राजन् ! तू शत्रुओं का नाशक और मधुरभाषी है ।

४८. त्वया वयँ संघातँ संघातं जेष्म ।—१।१६

हे परमेश्वर ! आपकी कृपा और सहाय से हम बड़े-बड़े संग्रामों और प्रत्येक समुदाय को बारम्बार सब प्रकार से जीतें ।

४९. धृष्टिरसि ।—१।१७

हे वीर पुरुष ! तू अत्यन्त निर्भय और शत्रु का घर्षण करने में समर्थ है।

५०. अग्ने अग्निमामादं जहि ।—१।१७

हे तेजस्विन् ! तू कच्चा मांस खानेवाली चिन्तारूपी अग्नि को अपने जीवन से मार भगा।

५१. ध्रुवमसि पृथिवीं दृँ ह ।—१।१७

हे परमेश्वर ! आप शाश्वत सुख देनेवाले हैं, अतः पृथिवीवासी मनुष्यों को उत्तम गुणों से वृद्धियुक्त कीजिए।

५२. अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व ।—१।१८

हे गतिशील जीव ! तू वेद-ज्ञान को प्राप्त कर, उसे जीवन में धारण कर। अथवा हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप वेद-मन्त्रों से की हुई मेरी स्तुति को स्वीकार कीजिए। अथवा हे ज्ञानिन् ! तू परमात्मा को प्राप्त कर।

५३. धरुणमस्यन्तरिक्षं दृँ ह ।—१।१८

हे परमेश्वर ! आप सबके धारण करनेवाले हैं, अतः आप मेरे अन्तःकरण में स्थित अक्षयज्ञान=वेद को बढ़ाइए, मेरे हृदय-अन्तरिक्ष को दृढ़ कीजिए।

५४. धर्त्रमसि दिवं दृँ ह ।—१।१८

हे परमेश्वर ! आप सब लोकों के धारण करनेवाले हैं, अतः अपने कृपा-कटाक्ष से हमारी बुद्धियों को स्थिर कीजिए।

५५. चित्त स्थोर्ध्वचितः ।—१।१८

हे मनुष्यो ! तुम सब चेतनायुक्त हो, महान् चेतनावान् हो। तुम ज्ञान-सम्पन्न हो, सर्वश्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न हो। [अपनी आत्म-चेतना को जगाओ]

५६. तपसा तप्यध्वम् ।—१।१८

हे मनुष्यो ! धर्म तथा विद्यानुष्ठानरूपी तप और तेज द्वारा तपो और तपाओ। स्वयं तपस्वी और तेजस्वी बनो, दूसरों को भी तपस्वी और तेजस्वी बनाओ। स्वयं चमको और अन्यों को भी चमकाओ।

५७. धान्यमसि ।—१।२०

हे मानव ! तू धन-धान्य से युक्त है, अतः सौभाग्यशाली है।

५८. धिनुहि देवान् ।—१।२०

हे मानव ! तू देवों=सदाचारी पुरुषों, विद्वानों को तृप्त एवं प्रसन्न कर।

५९. घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाः ।—१।२२

यज्ञ पूर्णायु और बहुत सुख देनेवाला है। अथवा, हे ब्रह्मचारिन् ! तू दीप्तिमान् है। तू दीर्घायु बन। संसार में यश और कीर्ति प्राप्त कर।

६०. उरु प्रथस्व।—१।२२

हे गृहस्थ ! तू खूब विस्तृत हो। तू धन-धान्य और प्रजा द्वारा फल-फूल। अथवा, हे शिष्य ! तू अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का खूब विस्तार कर, प्रत्येक क्षेत्र में प्रचुर प्रगति कर।

६१. मा भेर्मा संविक्थाः ।—१।२३

हे पुरुष ! तू मत डर, मत घबरा, उद्विग्न मत हो। साहसी और निर्भय बन।

६२. अतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् ।—१।२३

यज्ञशील [यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाले] यजमान के यहाँ ग्लानिरहित, श्रद्धावान्, अनासक्त और सबल सन्तान उत्पन्न हों। यजमान के यहाँ नास्तिक, कामी और निर्बल सन्तानें उत्पन्न न हों।

६३. वायुरसि तिग्मतेजाः ।—१।२४

हे मनुष्य ! तू गतिशील है और तू है सूर्य के समान तेजस्वी। तू प्राण के समान प्रचण्ड है और इतना तेजस्वी कि तेरे तेज को संस्कार की कोई शक्ति ढाँप नहीं सकती, इतना तेजस्वी कि तेरे तेज से सारा संसार जगमगा उठे।

६४. पृथिवि देवयजनि[1] ।—१।२५

पृथिवी देवों की यज्ञस्थली है, शुभ कर्म करने का विस्तृत क्षेत्र है। इस पृथिवी पर दिव्यताओं का विस्तार और संगतिकरण होना चाहिए।

६५. देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिँ सिषम् ।—१।२५

हे देवों की यज्ञस्थलि पृथिवि ! मैं तेरे ऊपर उत्पन्न होनेवाली ओषधियों के मूल=जड़ का विनाश न करूँ। अथवा, मैं दोषों को धोनेवाली प्राचीन मर्यादाओं और मान्यताओं पर कुठाराघात न करूँ।

६६. व्रजं गच्छ ।—१।२५

हे श्रेष्ठ मार्ग पर गमन के इच्छुक ! विद्वानों के सत्संग को प्राप्त कर।

---

१. वस्तुतः ये दोनों पद सम्बोधन हैं परन्तु भाव वही निकलता है जो ऊपर दिया है।

६७. अररो दिवं मा पप्तः ।—१।२६

हे प्रजापीड़क असुर ! तुझे सुख प्राप्त न हो । अथवा, असुरवृत्ते ! तू हमारे मस्तिष्क में मत चढ़; हमारे मस्तिष्क में असुर-वृत्तियाँ न रहें ।

६८. द्विषतो वधोऽसि ।—१।२८

हे साधक ! तू द्वेषियों का, द्वेष-भावनाओं का, काम-क्रोध आदि दुर्वृत्तियों का नाशक है ।

६९. अदित्यै रास्नासि ।—१।३०

हे सुकर्मा ! तू पृथिवी पर रहनेवाली प्रजा की सुसेवा के लिए, मानव-जाति के उत्थान के लिए, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए सदा कटिबद्ध रह ।

७०. तेजोऽसि ।—१।३१

हे ब्रह्मन् ! आप स्वयं प्रकाशमान् हैं । अथवा, हे जीव ! तू तेजस्वी है ।

७१. शुक्रमस्यमृतमसि । १।३१

हे परमेश्वर ! आप शुद्धस्वरूप और मोक्षसुख-प्रदाता हैं । अथवा हे जीव ! तू शुद्ध, पवित्र और नाशरहित है ।

७२. नामासि ।—१।३१

प्रभो ! आप उपासनीय हैं, वन्दनीय हैं ।

७३. प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ।—१।३१

हे देवाधिदेव ! आप विद्वानों के प्रिय, किसी से न दबनेवाले और विद्वानों द्वारा उपासनीय हैं । अथवा, हे जीव ! तू विद्वानों का प्यारा और दिव्यताओं का अक्षय दिव्यपुञ्ज है ।

७४. कवे द्युमन्तꣳ समिधीमहि ।—२।४

हे सर्वज्ञ ! क्रान्तप्रज्ञ ! हम अत्यन्त तेजस्वी आपको अपने हृदय-मन्दिर में अच्छी प्रकार प्रज्वलित, प्रकाशित करें ।

७५. पाहि यज्ञम् ।—२।६

हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! आप यज्ञ की रक्षा कीजिए ।

७६. पाहि यज्ञपतिम् ।—२।६

हे व्यापकेश्वर ! आप यज्ञशील धार्मिक यजमान की रक्षा कीजिए ।

७७. पाहि मां यज्ञन्यम् ।—२।६

हे विश्वपालक ! आप यज्ञ करानेवाले मुझ होता, अध्वर्यु, उद्गाता अथवा ब्रह्मा की रक्षा कीजिए ।

७८. नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः ।—२।७

हमारे घरों में देवों=विद्वानों का नमस्कारपूर्वक स्वागत, सत्कार और आतिथ्य हो और माता-पिता, आचार्य, गुरुजनों की अन्न, जल, धन-ऐश्वर्य से सुसेवा होती रहे ।

७९. वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषम् ।—२।८

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! मैं आपके अनेकविध ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले आश्रय को प्राप्त रहूँ ।

८०. ऊर्ध्वोऽध्वर आस्थात् ।—२।८

कुटिलतारहित अहिंसक मनुष्य उच्चावस्था प्राप्त करके आत्म-अवस्थित रहता है ।

८१. अवतां त्वां द्यावापृथिवी ।—२।९

हे मनुष्य ! पिता और माता तेरी रक्षा करें । द्यूलोक में चमकनेवाले ग्रह और नक्षत्र अपने प्रकाश आदि द्वारा और पृथिवी-निवासी मनुष्य तेरी रक्षा करें ।

८२. अव त्वं द्यावापृथिवी ।—२।९

हे मनुष्य ! तू अपने पिता और माता की रक्षा कर । तू अपने लोक और परलोक की रक्षा कर । तू सांसारिक सुख-ऐश्वर्य और ब्रह्म-प्राप्ति का प्रयत्न कर ।

८३. स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ।—२।९

हे साधक ! तू आत्मसमर्पण द्वारा आत्मज्योति से परमात्मारूपी ज्योति को प्राप्त कर ।

८४. मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधातु ।—२।१०

परमैश्वर्यशाली परमेश्वर मुझमें साधना की सिद्धि करानेवाला तेज और आत्मबल स्थापित करे ।

८५. अस्मन् रायो मघवानः सचन्ताम् ।—२।१०

परमेश्वर हम परोपकारियों को लोकोपकारी धन और ज्ञान से सम्पन्न करे ।

८६. अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्याः ।—२।१०

हे परमेश्वर ! हम परोपकार करनेवाले धर्मात्माओं की कामनाएँ सिद्ध, सफल, पूर्ण हों ।

८७. सत्या न सन्त्वाशिषः ।—२।१०

हे प्रभो ! हमारे आशीर्वचन सत्य हों ।

८८. यज्ञमव ।—२।१२

हे दिव्य-सुखदाता जगदीश्वर ! आप यज्ञ की रक्षा कीजिए ।

८९. मामव ।—२।१२

हे सुप्रेरक सवितादेव ! धर्म, सत्य और न्याय के मार्ग पर चलनेवाले आपके उपासक मुझ भक्त की रक्षा कीजिए ।

९०. मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य ।—२।१३

हे मनुष्यो ! अपने वेग से सर्वत्र जानेवाला, मननशील, ज्ञान का साधन तुम्हारा मन सदा शुभकर्मों में ही प्रवृत्त हो । अथवा, तुम्हारा वेगशाली मन ब्रह्मरूपी प्रकाश का सेवन करे ।

९१. विश्वे देवास इह मादयन्ताम् ।—२।१३

हे विद्वान् लोगो ! तुम इस संसार में अत्यन्त आनन्दित होओ, सदा सुप्रसन्न और प्रफुल्लित रहो ।

९२. ओ३म् प्रतिष्ठ ।—२।१३

हे सर्वरक्षक जगदीश्वर ! आप हमारे हृदय-मन्दिरों में प्रतिष्ठित होओ । अथवा, हे मनुष्यो ! सर्वरक्षक परमेश्वर को अपने हृदय-मन्दिरों में प्रतिष्ठित करो । अथवा, सदा-सर्वदा, सर्वरक्षक परमात्मा में स्थित रहो ।

९३. अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि ।—२।१५

जो मूर्ख मनुष्य हम विद्वानों से द्वेष करता है, तेजस्वी और शान्त हम उसे अपने से दूर करते हैं ।

९४. व्यन्तु वयोक्तं रिहाणा ।—२।१६

हे गृहलक्ष्मि ! अतिथिरूपी पक्षी तेरे गृहस्थरूपी सुन्दर घोंसले में चहचहाते हुए, प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश करें । तेरा घर ऐसा सुव्यवस्थित हो कि आगन्तुक तेरे घर की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करें ।

९५. चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ।—२।१६

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप नेत्र-ज्योति के रक्षक हैं, मेरी नेत्र-ज्योति की रक्षा कीजिए। मुझे गृध्र-जैसी दृष्टि प्रदान कीजिए।

९६. अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ।—२।१७

मैंने प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का आनन्दप्रद संरक्षण प्राप्त कर लिया है।

९७. सँ स्रवभागा स्थेषा ।—२।१८

हे मनुष्यो ! तुम ज्ञानपूर्वक घृतादि पदार्थों को यज्ञाग्नि में छोड़नेवाले होओ। अथवा, तुम स्वेच्छा से अपने कर्तव्यांश का ठीक रूप से पालन करो। अथवा, तुम अपने ज्ञान से उत्तम ऐश्वर्य के भागी बनो।

९८. अस्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ।—२।१८

हे विद्वानो ! तुम इस यज्ञीय आसन पर, ब्रह्मा आदि की वेदि पर बैठकर, अथवा हमारे ज्ञानयज्ञ में बैठकर हम सबको प्रसन्न करो।

९९. स्वाहा वाट् ।—२।१८

हे विद्वानो ! समस्त सुखों को प्राप्त करानेवाली वाणी और कर्म से हमें उत्तम उपदेश दो।

१००. यज्ञ नमश्च ते ।—२।१९

हे पूजनीय परमेश्वर ! हम तुझे नमस्कार करते हैं और तेरी उपासना करते हैं।

१०१. यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व ।—२।१९

हे साधक ! तू पूजनीय परमात्मा के कल्याणकारी स्वरूप में सम्यक् प्रकार से स्थित रह। अथवा, तू जीवनयज्ञ के शुभ अनुष्ठान में निरन्तर लगा रह।

१०२. पाहि मा दिद्योः ।—२।२०

हे अविनाशी परमेश्वर ! आप मुझे दारुण दण्डरूप दुःख और कष्ट से बचाइए।

१०३. पाहि प्रसित्यै ।—२।२०

हे प्रभो ! पापवृत्ति से मेरी रक्षा कीजिए।

१०४. पाहि दुरिष्ट्यै ।—२।२०

हे देव ! मुझे दुष्टजनों की संगति से बचाइए। अथवा, मुझे वेद-विरुद्ध हिंसामय, पाखण्डरूप यज्ञों से बचाइए।

१०५. पाहि दुरद्मन्यै ।—२।२०

हे अन्नपते ! आप हमें मद्य-मांस, अण्डा आदि दुष्ट एवं तामसिक अन्न के भोजन से बचाइए।

१०६. अविषं न पितुं कृणु ।—२।२०

हे अन्नपते परमेश्वर ! आप हमारे अन्न आदि पदार्थों को विष-दोष से रहित कीजिए, हमारी आजीविका को पवित्र कीजिए।

१०७. वेदोऽसि ।—२।२१

हे मानव ! तू ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान का पुतला है।

१०८. गातुं वित्त्वा गातुमित ।—२।२१

हे मनुष्यो ! पहले मार्ग को जानकर फिर उस मार्ग पर चलो। अथवा, वेद का ज्ञान प्राप्त करके जीवन-मार्ग पर आगे बढ़ो।

१०९. कस्त्वा विमुञ्चति ।—२।२३

हे मुमुक्षो ! [मोक्ष की इच्छावाले] तुझे कर्मबन्धनरूपी दुःख से कौन छुड़ाता है ?

११०. स त्वा विमुञ्चति ।—२।२३

वह सर्वोत्तम परमेश्वर तुझे कर्मबन्धनरूपी दुःख से छुड़ाता है।

१११. अगन्महि मनसा सँ्शिवेन ।—२।२४, ८।१४; १६

हम कल्याणकारी मन से युक्त हो गये हैं। हमारा मन शिवसंकल्पमय बन गया है।

११२. त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायः ।—२।२४

विश्वकर्मा, सुखप्रदाता परमेश्वर हमें नाना प्रकार के भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य प्रदान करें।

११३. अनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ।—२।२४

हे विश्वकर्मा ! हमारे शरीरों में जो न्यूनता है उसे दूर कर, जो अपवित्रता है उसका शोधन कर, जो प्राणघात है उसे दूर कर।

११४. अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ।—२।२५

हमने आत्मज्ञान, आनन्दस्वरूप परमात्मा को अथवा आनन्दमय लोक=मोक्ष को प्राप्त कर लिया है तथा विद्या और धर्म के प्रकाश से हम अच्छी प्रकार युक्त हो गये हैं।

११५. स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिः ।—२।२६

हे परमेश्वर ! आप स्वयंसिद्ध, सबसे प्रशंसनीय और परम ज्योति हैं। अथवा, हे मानव ! तू स्वयंभू, श्रेष्ठ एवं ज्योतिर्मय है।

११६. वर्चोदा असि वर्चो मे देहि ।—२।२६

हे परमेश्वर ! आप विद्या और ब्रह्मतेज-प्रदाता हैं, मुझे भी विज्ञान और ब्रह्मतेज प्रदान कीजिए।

११७. सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ।—२।२६; २७

मैं सूर्य के वृत्त का आवर्तन करता हूँ अर्थात् सूर्य के गुणों को अपने जीवन में धारण करता हूँ। अथवा, सूर्य के समान चराचर जगत् के प्रेरक परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट वैदिक आचार का पालन करता हूँ।

११८. अस्थूरि नौ गार्हपत्यानि सन्तु ।—२।२७

हे परमेश्वर ! हम गृहस्थ स्त्री-पुरुषों के गृह-कार्य निरालस्यता से सिद्ध हों।

११९. अहं य एवाऽस्मि सोऽस्मि ।—२।२८

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! मैंने उत्तम या अधम जैसा कर्म किया है, वैसा ही फल भोगता हूँ। अथवा, मैं भला या बुरा जैसा भी हूँ, वैसा हूँ।

१२०. अपहता असुरा रक्षाᳬसि वेदिषदः ।—२।२९

जो इस पृथिवी पर रमण करनेवाले, औरों को दुःखदायी स्वार्थीजन हैं, जो दुष्ट स्वभाववाले मूर्ख हैं, उनको विनष्ट कर देना चाहिए अर्थात् उन्हें श्रेष्ठ और सदाचारी बना देना चाहिए।

१२१. अत्र पितरो मादयध्वम् ।—२।३१

उत्तम विद्या, उत्तम शिक्षाओं और विद्यादान से मनुष्यों का पालन-पोषण करनेवाले हे मात-पिता, वृद्ध एवं गुरुजनो ! आप इस संसार में अत्यन्त आनन्दित होओ, स्वयं प्रसन्न रहो और दूसरों को भी प्रसन्न करो।

१२२. अमीमदन्त पितरः ।—२।३१

हे विद्वान् लोगो ! सबको आनन्दित करो।

१२३. नमो वः पितरो रसाय ।—२।३२

हे विद्या के आनन्द को देनेवाले विद्वान् लोगो ! विज्ञानरूपी आनन्द की प्राप्ति कराने के लिए आपको हमारा नमस्कार हो।

१२४. समिधाग्निं दुवस्यत ।—३।१

हे साधको ! आत्मारूपी समिधा द्वारा परमात्मारूपी अग्नि की परिचर्या, सेवन करो । अथवा, हे यजमानो ! प्रज्वलनशील काष्ठ-समिधाओं से यज्ञाग्नि की परिचर्या करो ।

१२५. घृतं तीव्रं जुहोतन ।—३।२

हे यजमानो ! तीव्र=अत्यन्त उष्ण, गर्म-गर्म घी की यज्ञाग्नि में आहुति दो।

१२६. जुषस्व समिधो मम ।—३।४

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप मेरी आत्मारूपी समिधा को प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिए ।

१२७. द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।—३।५

मैं द्युलोक के समान तेजस्व और पृथिवी के समान विशाल एवं सहनशील हो गया हूँ ।

१२८. आयं गौः पृश्निरक्रमीत् ।—३।६

यह प्रत्यक्ष गोलाकार पृथिवी आकाश=पोल, अवकाश में सूर्य के चारों ओर घूमती है । अथवा, गतिशाली आत्मा ने सुख और शान्ति फैलाने के लिए सारे संसार में सब ओर धावा बोल दिया है ।

१२९. मन्त्रं वोचेमाग्नये ।—३।११

हम ज्ञानस्वरूप सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर के लिए वेद-मन्त्रों का उच्चारण करें ।

१३०. अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः ।—३।१२

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर सबसे बड़ा, सबके ऊपर विराजमान और सूर्यादि लोकों का पालक है ।

१३१. नो वर्द्धया रयिम् ।—३।१४

हे जगदीश्वर ! आप हमारे धन-धान्य और ऐश्वर्य को खूब बढ़ाइये ।

१३२. अयमिह प्रथमो धायि धातृभिः ।—३।१५

योग-क्रियाओं का अनुष्ठान करनेवाले उपासक, इस संसार में सर्वत्र विराजमान, सर्वश्रेष्ठ, अनुपम और अद्वितीय परमेश्वर को हृदय में धारण करते हैं ।

१३३. शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।—३।१६

ब्रह्मचारीगण वीर्य को अपने शरीर में धारण करते हैं ।

१३४. तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ।—३।१७

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप शरीरों की रक्षा करनेवाले हैं, अतः आप मेरे शरीर की रक्षा कीजिए ।

१३५. आयुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि ।—३।१७

हे प्रभो ! आप सबको आयु देनेवाले हैं, मुझे भी पूर्ण-आयु प्रदान कीजिए।

१३६. अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ।—३।१७

हे सब कामनाओं के पूरक परमेश्वर ! मेरे शरीर में जितनी बुद्धि, बल और शौर्य आदि की न्यूनता है, उस न्यूनता को आप अच्छी प्रकार पूर्ण कर दीजिए ।

१३७. चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ।—३।१८

हे आश्चर्यरूप धनवाले परमेश्वर ! आपकी कृपा से मैं सब दुःखों से पार होकर सुख को प्राप्त करूँ ।

१३८. सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः ।—३।१६

हे जीवात्मन् ! तू सूर्य और परमेश्वर को तेज के साथ संयुक्त हो ।

१३६. रेवती रमध्वमस्मिन्योनौ ।—३।२१

इस घर में गौएँ खूब रमण करें । अथवा, धन-धान्य इस घर में प्रचुर मात्रा में सदा विद्यमान रहे । अथवा, दैवी सम्पदाएँ हमारे जीवन में निरन्तर रमण करती रहें ।

१४०. इहैव स्त मापगात ।—३।२१

यहीं डटे रहो, अपने स्थान से विचलित मत होओ ।

१४१. नमो भरन्त एमसि ।—३।२२

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हम नमस्कार की भेंट करते हुए तेरे समीप आ रहे हैं ।

१४२. अग्ने सूपायनो भव ।—३।२४

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप हमें सरलता से प्राप्त होनेवाले हूजिए । अथवा, आप हमें श्रेष्ठ ज्ञान देनेवाले हूजिए ।

१४३. सचस्वा नः स्वस्तये ।—३।२४

हे दयानिधे ! आप हमें लौकिक और पारलौकिक सुख के साथ संयुक्त कीजिए ।

१४४. अग्ने त्वन्नोऽन्तम उत त्राता ।—३।२५

हे सर्वरक्षक ! आप हम लोगों के जीवन-आधार और रक्षक हैं ।

१४५. अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ।—३।२५

हे सर्वव्यापक प्रभो ! आप हमें प्रकाशयुक्त विद्या और मोक्षरूपी धन अच्छे प्रकार प्राप्त कराइए ।

१४६. स नो बोधि श्रुधी हवम् ।—३।२६

प्रभो ! हमारी पुकार सुनिए और हमें बोध और विज्ञान प्राप्त कराइए ।

१४७. उरुष्या णो अघायतः समस्मात् ।—३।२६

हे परमेश्वर ! हमें सब प्रकार के पाप-आचरणों, काम-क्रोधादि दुर्व्यसनों और दूसरों को पीड़ा देनेरूपी पाप की इच्छा से बचाइए ।

१४८. सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।—३।२८

हे वेदपालकेश्वर ! आप मुझे सौम्य, निष्पाप, विनम्र तथा वेद और सब विद्याओं का उपदेष्टा बनाइए ।

१४९. स नः सिषक्तु यस्तुरः ।—३।२९

शीघ्रकारी परमेश्वर हमें श्रेष्ठ गुण और कर्मों के साथ संयुक्त करे ।

१५०. अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।—३।३०

प्रभो ! धूर्तता करनेवाले मनुष्य की धूर्तता नष्ट हो जाए ।

१५१. रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ।—३।३०

हे वेदपते ! हम लोगों की वेद-विद्या द्वारा निरन्तर रक्षा कीजिए ।

१५२. इन्द्र सश्चसि दाशुषे ।—३।३४

हे सुखदाता परमेश्वर ! आप आत्म-समर्पक को प्राप्त होते हैं ।

१५३. मघवन् भूय इन्नु ते दानम् ।—३।३४

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! सचमुच तेरे दान बहुत हैं, तू बहु-दानी है ।

१५४. धियो यो नः प्रचोदयात् ।—३।३५; ३०।२; ३६।३

सर्वान्तर्यामी सवितादेव हम सबकी बुद्धियों को उत्तम गुण-कर्म-स्वभावों में प्रेरित करे ।

१५५. सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम् ।—३।३७

हे प्रभो ! मैं पुत्र आदि उत्तम सन्तानों द्वारा सुसन्तानवाला होऊँ ।

१५६. नर्य प्रजां मे पाहि ।—३।३७

हे विश्वब्रह्माण्ड के संचालक ! आप कृपा कर मेरी पुत्र आदि प्रजा का पालन और रक्षण कीजिए ।

१५७. श ॅ् स्य पशून्मे पाहि ।—३।३७

हे स्तुति के योग्य परमेश्वर ! आप मेरे गौ, घोड़े आदि पशुओं की रक्षा कीजिए ।

१५८. अथर्य पितुं मे पाहि ।—३।३७

हे अविचल प्रभो ! आप मेरे अन्न की रक्षा कीजिए ।

१५९. आगन्म विश्ववेदसम् ।—३।३८

हम साधक लोग अपनी उत्कट श्रद्धा-भक्ति और शम-दम आदि के पालन से सर्वज्ञ और सबको सुखप्रदान करनेवाले परमेश्वर को प्राप्त हो गये हैं ।

१६०. गृहा मा बिभीत मा वेपध्वम् ।—३।४१

हे गृहस्थो ! मत डरो, मत काँपो । गृहस्थ के उत्तरदायित्वों से भयभीत मत होओ, घबराकर भागो मत ।

१६१. उपहूता इह गावः ।—३।४३

हमारे घरों में गौएँ लाई गई हैं । हमारे घर में गौएँ रम्भा रही हैं ।

१६२. अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।—३।४३

हमारे घरों में नाना प्रकार के अन्न और अन्नों से निर्मित स्वादिष्ट व्यंजनों के ढेर लगे हुए हैं ।

१६३. अक्रन् कर्म कर्मकृतः ।—३।४७

कर्मशील लोग अपने अभीष्ट कर्म को करते हैं ।

१६४. कर्म कृत्वास्तं प्रेत ।—३।४७

काम करके घर जाओ ।

१६५. अस्तं प्रेत सचाभुवः ।—३।४७

परस्पर मिलकर काम करनेवाले पूर्ण सुखयुक्त घर को प्राप्त होते हैं ।

१६६. पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ।—३।४८

हे आनन्दप्रद परमेश्वर ! आप हम लोगों की बहुत रुलानेवाले हिंसक पुरुष से, बहुत दुःख देनेवाले शत्रु अथवा पाप से रक्षा कीजिए । अथवा देव ! आप हमारी नाना प्रकार के भोग-विलास प्रदान करनेवाले विनाशकारी प्रेयमार्ग से रक्षा कीजिए ।

१६७. देहि मे ददामि ते ।—३।५०

तू मुझे दे, मैं तुझे देता हूँ ।

१६८. योजान्विन्द्र ते हरी ।—३।५१

हे सभापते ! तू अपने बल और पराक्रम को हम सभासदों के साथ संयुक्त रख । अथवा हे मेरे आत्मन् ! तू अपने विवेक और साहस को निरन्तर संयुक्त रख ।

१६९. त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।—३।५२

हे विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! हम लोग आपकी स्तुति करते हैं ।

१७०. स्तुतो यासि वशाँ अनु ।—३।५२

स्तुति किया हुआ परमात्मा इच्छित पदार्थों को प्रदान करता है । अथवा स्तुति किया हुआ परमात्मा अपने चाहनेवालों को प्राप्त होता है ।

१७१. मनो न्वाह्वामहे ।—३।५३

हम संकल्प-विकल्पात्मक मन को सब ओर से हटाकर दृढ़ करते हैं ।

१७२. आ न एतु मनः पुनः ।—३।५४

हम लोगों को संकल्प-विकल्पात्मक मन जन्म-जन्म में प्राप्त होता रहे ।

१७३. जीवं व्रातं सचेमहि ।—३।५५

हम लोग ज्ञान-साधनयुक्त श्रेष्ठ-जीवन और सत्यभाषण आदि व्रतों को अच्छे प्रकार प्राप्त रहें ।

१७४. आखुस्ते पशुः ।—३।५७

हे प्रभो ! मेरा मन तेरा दृष्टा और तेरा अन्वेषण करनेवाला हो ।

१७५. त्र्यम्बकं यजमहे ।—३।६०

हम तीनों कालों में एकरस रहनेवाले, तीनों लोकों के द्रष्टा सर्वज्ञ रुद्र [रोग, दुःख और तापों को नष्ट करनेवाले] रूप जगदीश्वर की नित्य उपासना करें ।

१७६. मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।—३।६०

हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर ! हम मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाएँ परन्तु अविनाशी अमृतत्व=मोक्ष की अभिलाषा से कभी पृथक् न हों ।

१७७. मूजवतोऽतीहि ।—३।६१

हे साधक ! तू अपनी सतत साधना से पर्वतों को लाँघ जा, कठिनाइयों को पार कर ।

१७८. नो अस्तु त्र्यायुषम् ।—३।६२

हे जगदीश्वर ! आप हमें शरीर, आत्मा और समाज को आनन्द देनेवाला तीन सौ वर्ष का आयु, जीवन प्रदान कीजिए ।

१७९. शिवो नामासि ।—३।६३

हे रुद्र ! तू शिव नामवाला है। तू दुःखों का नाश करके मंगल-प्रदाता है।

१८०. नमस्ते अस्तु ।—३।६३

हे मंगलस्वरूप ! तेरे लिए नमस्कार हो ।

१८१. मा मा हि ँ्सीः ।—३।६३

हे प्रजापालक ! तू मुझे हिंसित मत कर । संसार के विघ्न-बाधाओं और भोग-विलासों में मुझे क्षत-विक्षत न होने दे ।

१८२. रायस्पोषेण समिषा मदेम ।—४।१

हम धन-धान्य की पुष्टि, उत्तमोत्तम विद्या की इच्छा और अन्न आदि के द्वारा सदा आनन्दित, प्रफुल्लित और सुखी रहें ।

१८३. आपः शमु मे सन्तु देवीः ।—४।१

दिव्य-जल धाराएँ और जल के समान निर्मल एवं सदाचारी पुरुष मेरे लिए, प्रत्येक व्यक्ति के लिए शान्तिदायक हों ।

१८४. ओषधे त्रायस्व ।—४।१

रोगनिवारक ओषधे ! दोष निवारक सद्वैद्य ! तू हमारी रक्षा कर ।

१८५. स्वधिते मैनं ँ् हि ँ्सी ।—४।१

हे ओषधे ! रोग-नाश में वज्र के समान होकर तू इस यजमान को अथवा प्राणिमात्र को कभी मत मार ।

१८६. आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु ।—४।२

निर्मल, शीतल, शान्त और शोधक माताएँ हमें शुद्ध और पवित्र करें। अथवा माता के समान रक्षा करनेवाले जल हम लोगों के बाह्य देश को, शरीर को पवित्र करें ।

१८७. विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः ।—४।२

दिव्य माताएँ अपनी सन्तान के समस्त दोषों को धो डालती हैं ।

१८८. दीक्षातपसोस्तनूरसि ।—४।२

मेरे शरीर ! तू दीक्षा और तप का विस्तारक=साधक है।

१८९. चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि।—४।३

हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर ! तू चक्षु-प्रदाता है, मुझे भी ज्ञान-चक्षु प्रदान कर। अथवा हे सूर्य ! तू नेत्र के व्यवहार को सिद्ध करनेवाला है, मुझे नेत्रों के व्यवहार की सिद्धि, नेत्र-ज्योति प्रदान कर।

१९०. चित्पतिर्मा पुनातु।—४।४

विज्ञान का स्वामी परमेश्वर मुझे और मेरे चित्त को पवित्र करे।

१९१. वाक्पतिर्मा पुनातु।—४।४

वाणी का स्वामी परमेश्वर मुझे और मेरी वाणी को पवित्र करे।

१९२. देवो मा सविता पुनातु।—४।४

सब जगत् को उत्पन्न करनेवाला और अपने प्रकाश से देदीप्यमान परमेश्वर मुझे और मेरे नेत्रों को पवित्र करे।

१९३. बृहस्पतये हविषा विधेम।—४।७

हम वाणी और आकाश आदि के स्वामी परमेश्वर के लिए सत्य और प्रेम-भाव से आत्म-समर्पण करें।

१९४. विश्वो राय इषुध्यति।—४।८

सब मनुष्य, प्रत्येक मनुष्य धन के लिए तीर चला रहा है। प्रत्येक मनुष्य धर्म-अधर्म से धन कमाने के लिए मारा-मारा फिर रहा है।

१९५. द्युम्नं वृणीत पुष्यसे।—४।८

हे मानव ! तू आत्म-कल्याण के लिए, पुष्टि के लिए दिव्य धन का, आत्मिक गुणों का वरण कर।

१९६. शर्मासि शर्म मे यच्छ।—४।९

हे परमेश्वर ! आप सुखस्वरूप और सबकी शरण हैं, मुझे भी सुख और अपनी शरण प्रदान कीजिए।

१९७. सुसस्याः कृषीस्कृधि।—४।१०

हे मानव ! तू अपने शरीररूपी खेत में उत्तम उपजोंवाली, सुधान्योंवाली खेतियाँ कर। वह पुण्य की खेती कर कि तेरे दोनों लोक सुधर जाएँ।

१९८. उच्छ्रयस्व वनस्पते।—४।१०

भक्तशिरोमणे ! ऊँचा उठ, उन्नति कर।

१९९. मा पाह्य ँ हसः ।—४।१०

हे परमेश्वर ! विद्वन् ! आप मुझे पाप से, दुष्कर्मों से बचाइए ।

२००. व्रतं कृणुत ।—४।११

हे मनुष्यो ! व्रती बनो ! व्रत=नियमपूर्वक धर्माचरण, सत्य का अनुष्ठान, दुर्गुणों का त्याग और सद्गुण ग्रहण कीजिए ।

२०१. दैवीं धियं मनामहे ।—४।११

हम दिव्यगुण सम्पन्न बुद्धि की याचना करते हैं ।

२०२. दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ।—४।११

जो कर्मकुशल हैं, वे हमारी रक्षा करें ।

२०३. इयं ते यज्ञया तनूः ।—४।१३

हे मनुष्य ! तेरा यह शरीर यज्ञीय है, तुझे यह शरीर परोपकार, सत्कर्म करने और प्रभु-प्राप्ति के लिए मिला है ।

२०४. पृथिव्या सम्भव ।—४।१३

हे विद्वन् ! तू भूमि के साथ जुट जा, पृथिवी पर पराक्रम कर ।

२०५. अग्ने त्व ँ सु जागृहि ।—४।१४

हे तेजस्विन् ! ज्ञानिन् ! अग्रणे ! तू सदा जागरूक, सावधान रह ।

२०६. वय ँ सुमन्दिषीमहि ।—४।१४

सांसारिक कर्मों का अनुष्ठान करनेवाले हम सदा आनन्दित, प्रफुल्लित और सुप्रसन्न रहें ।

२०७. प्रबुधे नः पुनस्कृधि ।—४।१४

हे अग्रणे ! नायक ! तू हमें बार-बार, निरन्तर प्रबुद्ध सावधान करता रह ।

२०८. पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् ।—४।१५

प्रभु-कृपा से पुनर्जन्म में मुझे विज्ञान-साधक मन और दीर्घायु पुनः-पुनः प्राप्त हों ।

२०९. पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् ।—४।१५

परमेश्वर के अनुग्रह से पुनर्जन्म में मुझे शरीर का आधार प्राण और आत्मा पुनः-पुनः प्राप्त हों ।

२१०. पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् ।—४।१५

ईश्वर की दया से पुनर्जन्म में मुझे देखने के लिए नेत्र और सुनने के लिए कान पुनः-पुनः प्राप्त हों ।

२११ अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ।—४।१५

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हमें दुर्गति से, निन्दनीय-पाप, दुःख और दुष्टकर्मों से निरन्तर बचाए।

२१२. त्वमग्ने व्रतपा असि ।—४।१६

हे जगदीश्वर! तू समस्त व्रतों, उत्तम कर्मों का पालक, उनके निर्विघ्न समाप्त होने में सहायक है।

२१३. त्वं यज्ञेष्वीड्यः ।—४।१६

हे परमेश्वर! आप उपासना-यज्ञों में स्तुत्य हैं।

२१४. सोमा भूयो भर !—४।१६

हे सोम! ऐश्वर्यप्रदाता परमेश्वर! आप हमें बार-बार नानाविधि ऐश्वर्य और सब सुख प्रदान कीजिए।

२१५. वसोर्दाता वस्वदात् ।—४।१६

धन-प्रदाता परमेश्वर धन प्रदान करता है।

२१६. आजं गच्छ ।—४।१७

हे पराक्रमशाली मानव! तू दीप्तिमय जीवन को प्राप्त कर, प्रकाश को आत्म-ज्योति को प्राप्त कर, प्रकाशमान परमेश्वर को प्राप्त कर।

२१७. यन्त्रमशीय ।—४।१८

हे परमेश्वर! मैं नाना प्रकार के यन्त्रों को प्राप्त करूँ।

२१८. शुक्रमसि ।—४।१८

प्रभो! तू अत्यन्त दीप्त और परम शुद्ध है। अथवा आत्मन्! तू दीप्तिमान् शुद्ध, पवित्र और शक्तिशाली है।

२१९. चन्द्रमसि ।—४।१८

दिव्य देव! तू आह्लादक है। अथवा जीवात्मन्! तू चन्द्रमा के समान सबका आह्लादक है।

२२०. अमृतमसि ।—४।१८

हे परमेश्वर! तू अखण्ड-एकरस और आनन्द का सागर है। अथवा प्रियात्मन्! तू अविनाशी है।

२२१. वैश्वदेवमसि ।—४।१८

देव! तू अखिल ब्रह्माण्ड को अपने प्रकाश से प्रकाशित करनेवाला है।

२२२. अनु त्वा माता मन्यताम् ।—४।२०

हे मानव ! ऐसा जीवन जी कि तेरी माता तुझ पर गर्व अनुभव करे।

२२३. अदितिरसि ।—४।२१

हे मानव ! तू दीन-हीन नहीं है अपितु तू अदीन है, अदम्य शक्तियों का पुञ्ज है।

२२४. बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु ।—४।२१

हे मानव ! परमेश्वर तुम्हें सुख, प्रसन्नता और आनन्द में निरन्तर रमण कराए, तुझे सुख में प्रेरित करे।

२२५. मा वय ँ रायस्पोषेण वि यौष्म ।—४।२२

हे परमेश्वर ! आपके अनुग्रह से हम लोग धन-धान्य की पुष्टि और समृद्धि से कभी भी पृथक् न हों, अर्थात् सदा धन-धान्य से भरपूर रहें।

२२६. समख्ये देव्या धिया ।—४।२३

मैं ज्ञानवती प्रज्ञा से विवेक करके उपदेश करूँ।

२२७. मा म आयुः प्रमोषीः ।—४।२३

हे बृहस्पते ! मेरे जीवन को खण्डित मत कर।

२२८. मो अहं तव वीरं विदेय ।—४।२३

प्रभो ! मैं तुझसे कभी विमुख न होऊँ, तुझे जीवन में कभी न भूलूँ।

२२९. तव देवि सन्दृशी ।—४।२३

हे आनन्दप्रद परमेश्वर ! मैं सदा तेरे सन्दर्शन में, तेरी सन्दृष्टि में रहूँ। तू मुझे कभी मत भूल।

२३०. अस्माकोऽसि ।—४।२४

हे प्रभो ! तू हमारा है, तू ही हमारा आधार और आश्रय है।

२३१. शुक्रस्ते ग्रह्यः ।—४।२४

देव ! आपकी निर्मलता, तेजस्विता, शीघ्रकारिता ग्रहण करने योग्य है।

२३२. विचितस्त्वा विचन्वन्तु ।—४।२४

हे परमेश्वर ! चयन करनेवाले तेरा ही चयन करें, तेरा ही वरण करें। अथवा हे मानव ! विद्यादि शुभ गुण और धन-धान्य से युक्त विद्वान् तुझे बुद्धि-युक्त करें।

२३३. प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ।—४।२५

हे परमेश्वर ! आप मानव-प्रजाओं पर अनुग्रह कीजिए । अथवा हे सुधारक! तू समस्त प्रजाओं को अपनी शक्ति से अनुप्राणित कर दे ।

२३४. शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि ।—४।२६

प्रभो ! मैं तुझ परम पावन देव को यम-नियम और तप से पवित्र जीवन से खरीदता हूँ, तुझे प्राप्त करता हूँ ।

२३५. सहस्रपोषं पुषेयम् ।—४।२६

मैं अनेक प्रकार की पुष्टियों को प्राप्त करके अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों का पोषण करूँ ।

२३६. मित्रो न ऐहि ।—४।२७

हे परमेश्वर ! सबके मित्र आप हम लोगों को अच्छी प्रकार प्राप्त हूजिए, हमारे हृदय-मन्दिर में दर्शन दीजिए ।

२३७. परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्व ।—४।२८

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप कृपा करके मुझे दुश्चरित, दुराचरण और दुष्टाचार से दूर कीजिए ।

२३८. आ मा सुचरिते भज ।—४।२८

प्रभो ! मुझे सुचरित्र, सदाचार, श्रेष्ठ-व्यवहार में स्थापित कीजिए ।

२३९. उदायुषा स्वायुषोदस्थाम् ।—४।२८

मैं उत्कृष्ट और शुभ जीवन के लिए उद्योगशील होऊँ ।

२४०. प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।—४।२९

हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से हम लोग निष्पाप और सुखपूर्वक जाने योग्य मार्ग पर चलें ।

२४१. भद्रो मेऽसि ।—३।३४

हे देव ! तू मेरा कल्याणकर्त्ता बन्धु है ।

२४२. मा त्वा परिपन्थिनो विदन्—।४।३४

हे बटोही ! पथिक ! तुझे मार्ग में चोर, डाकू और लुटेरे न मिलें । तेरी यात्रा निर्विघ्न हो ।

२४३. श्यनो भूत्वा परापत ।—४।३४

हे शूरवीर ! तू श्येन=बाज पक्षी के समान शत्रुओं पर टूट पड़ ।

२४४. प्रचरा सोम दुर्यान् ।—४।३७

हे सौम्यस्वभाव विद्वन् ! तू यज्ञादि कराता और उपदेश देता हुआ घर-घर में पहुँच ।

२४५. पुरूरवा असि ।—५।२

हे कर्मशील उपदेशक ! तू बहुतों तक अपना ज्ञानमय उपदेश पहुँचाने में समर्थ है ।

२४६. मा यज्ञ ँ हि ँ सिष्टं मा यज्ञपतिम् ।—५।३

हे दम्पती ! तुम दोनों न तो जीवन-यज्ञ को विच्छिन्न करो और न ही आत्मघात करो [आत्मा के विरुद्ध आचरण ही आत्मघात है । यज्ञपति=आत्मा]

२४७. जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ।—५।३

हे दम्पती ! तुम दोनों हमारे लिए आज, इसी जीवन में जातवेद=बहुज्ञानी और कल्याणकारी बनो । अथवा वेद और वैदिक विद्याओं को पढ़ने और पढ़ानेवाले विद्वान् आज=वर्तमान जीवन में हम लोगों के लिए कल्याण करनेवाले हों ।

२४८. अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः ।—५।४

ज्ञानस्वरूप परमात्मा जीवात्मा में प्रविष्ट होकर विचरता है ।

२४९. स नः स्योनः सुयजा यजेह ।—५।४

हे मनुष्य ! तू सुखकारी दानकर्म से इस लोक में यज्ञ=परोपकार कर्म कर । अथवा तू स्वजीवन से प्रभु-उपासना कर ।

२५०. अनाधृष्यं देवानामोजः ।—५।५

हे सर्वोत्कृष्ट पुरुष ! तू कभी भी पराजित न होनेवाला युद्धविजेता पुरुषों का बल है ।

२५१. सत्यमुपगेष ँ स्विते मा धाः ।—५।५

हे परमात्मन् ! तू मुझे सुख प्रदान करनेवाले व्यवहार में स्थापित कर जिससे मैं सत्य व्यवहार को जानकर उसका अनुष्ठान करूँ ।

२५२. स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय ।—५।७

हे देव ! सोम ! मैं सुखपूर्वक तेरे आनन्दरस का भोग करूँ ।

२५३. ऋतमृतवादिभ्यः ।—५।७

हमारे जीवन में सत्यवादी आचार्यों के लिए श्रद्धा हो ।

२५४. नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ।—५।७

माता-पिता के लिए नमस्कार हो। हम माता-पिता का अभिवादन और अन्नादि के द्वारा उनका सत्कार करें।

२५५. उग्रं वचो अपावधीत् ।—५।८

कठोर वचन को मार भगा, त्याग दे।

२५६. त्वेषं वचो अपावधीत् ।—५।८

तीक्ष्ण, कटु वचन को मार भगा, त्याग दे।

२५७. अवतान्मा नाथितात् ।—५।९

पृथिवि ! प्रियतमे ! तू मुझे दीनता और सन्ताप से बचा।

२५८. अवतान्मा व्यथितात् ।—५।९

प्रियतमे ! पृथिवि ! मुझे व्यथा, शत्रुओं और दुष्टजनों के आक्रमण से बचा।

२५९. सिह्यसि ।—५।१२

देवि ! तू सिंहिनी है। तू महान् शक्तिशालिनी है।

२६०. ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृँ ह ।—५।१३

हे विद्वन् ! तू ध्रुव=निश्चल, अडिग है। तू पृथिवी को=पृथिवी-वासियों को धर्म में दृढ़ कर।

२६१. युञ्जते धियो विप्राः ।—५।१४

मेधावी, योगीजन, विद्वान् लोग अपनी धारणाओं को परमेश्वर में स्थिर करते हैं।

२६२. प्राची प्रेतम् ।—५।१७

हे दम्पती ! तुम दोनों उत्कर्ष के मार्ग पर, प्रकाश की ओर जाते हुए आगे-ही-आगे बढ़ो।

२६३. ऊर्ध्वं यज्ञं नयतम् ।—५।१७

हे दम्पती ! तुम यज्ञ=परोपकार, सेवा-भाव, कला-कौशल, पृथिवी के दिव्यीकरण को आगे बढ़ाओ।

२६४. मा जिह्वरतम् ।—५।१७

हे दम्पती ! तुम दोनों कुटिलता मत करो, अपने कार्य में शिथिलता मत लाओ।

२६५. आयुर्मा निर्वादिष्टम् ।—५।१७

हे दम्पती ! तुम अपने जीवन को बर्बाद मत करो ।

२६६. प्रजां मा निर्वादिष्टम् ।—५।१७

हे दम्पती ! तुम अपनी प्रजा को नष्ट मत करो ।

२६७. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचम् ।—५।१८

मैं सुखस्वरूप सर्वव्यापक परमेश्वर के पराक्रमयुक्त कर्मों का वर्णन करता हूँ ।

२६८. उभा हि हस्ता वसुना पृणस्व ।—५।१९

हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! आप मेरे दोनों हाथों को धन-धान्य से भर दीजिए ।

२६९. विष्णु स्तवते वीर्येण ।—५।२०

पराक्रम के कारण, पराक्रमी होने के कारण परमेश्वर की स्तुति की जाती है ।

२७०. वैष्णवमसि ।—५।२१

तू वैष्णव[1] है ।

२७१. अहं रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि ।—५।२२

मैं राक्षसों [काम-क्रोध आदि दुर्वृत्तियों] की गर्दनों को निरन्तर काटता रहता हूँ ।

२७२. बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ।—५।२२

हे विद्वन् ! तू परमेश्वर के प्रति महान् वेदवाणी का कथन, गान कर ।

२७३. स्वराडसि सपत्नहा ।—५।२४

हे विद्वन् ! तू अपने प्रकाश से प्रकाशमान् है, अतः तू काम-क्रोधादि शत्रुओं का संहारक है ।

२७४. यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीः ।—५।२६

हे विद्वन् ! तू उत्तम गुणों से मिलानेवाला और दुष्ट गुणों से पृथक् करनेवाला है, अतः हमारे जीवनों में से ईर्ष्या और द्वेष तथा अदानशीलता की भावनाओं को दूर कर ।

---

१. वैष्णव कौन है—

वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीड़ पराई जाने रे ।

२७५. उद्दिवं स्तभान ।—५।२७

हे विद्वन् ! तू सूर्य की भाँति मनुष्यों के मस्तिष्क को प्रकाश से आलोकित कर दे ।

२७६. अन्तरिक्षं पृण ।—५।२७

हे विद्वन् ! तू मानव-प्रजाओं के हृदय-अन्तरिक्ष को प्रेम, सौहार्द, उत्साह और साहस से आपूर कर दे, भर दे ।

२७७. ब्रह्म दृँ्ह क्षत्रं दृँ्हायुर्दृँ्ह ।—५।२७

विद्वन् ! तू अपने ब्रह्मज्ञान, विवेक को बढ़ा, तू अपने क्षात्रतेज, क्षात्रबल को बढ़ा, तू अपनी आयु को बढ़ा ।

२७८. प्रजां दृँ्ह ।—५।२७

हे मनुष्य ! तू अपनी प्रजा को, सन्तानों को बढ़ा, उन्हें आचार में समुन्नत और धर्म में दृढ़ बना ।

२७९. ध्रुवाऽसि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने ।—५।२८

हे स्त्रि ! जैसे तू धर्मानुष्ठान में दृढ़संकल्प है, उसी प्रकार इस गृहस्थाश्रम में तेरा पति भी यज्ञानुष्ठान और धर्मकार्यों में दृढ़संकल्पवाला हो ।

२८०. वैश्वदेवमसि ।—५।३०

हे मानव ! अपनी शक्तियों को पहचान, तू अपनी साधना द्वारा विश्व का दिव्यीकरण करनेवाला है ।

२८१. विभूरसि ।—५।३१

हे परमेश्वर ! आप सर्वव्यापक और ऐश्वर्यवान् हैं ।

२८२. उशिगसि कविरङ्घारिरसि ।५।३२

हे परमेश्वर ! आप कान्तिमान् हैं, क्रान्तप्रज्ञ हैं और कुटिलता के शत्रु= निवारण करनेवाले हैं ।

२८३. समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽसि ।—५।३३

हे परमेश्वर ! आप सब प्राणियों का गमन-आगमन करनेवाले, उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले, सर्वव्यापक और अजन्मा हैं ।

२८४. अध्वनामध्वपते प्र मा तिर ।—५।३३

हे धर्ममार्ग-प्रदर्शक परमेश्वर ! आप मुझे धर्ममार्ग से चलाकर संसार-सागर से पार कीजिए ।

२८५. स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ।—५।३३

हे परमात्मन् ! मुझ पर ऐसा अनुग्रह कीजिए कि विद्वानों द्वारा गमन करने योग्य धर्ममार्ग में मुझे सुख की प्राप्ति हो ।

२८६. मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वम् ।—५।३४

हे विद्वानो ! आप मुझे मित्र की दृष्टि से देखिए ।

२८७. माग्नयः पिपृत ।—५।३४

हे विद्वानो ! आप मुझे सुखों से पूर्ण कीजिए ।

२८८. अग्नयो गोपायत मा ।—५।३४

हे विद्वानो ! आप सब प्रकार से मेरा पालन और रक्षण कीजिए ।

२८९. नमो वोऽस्तु ।—५।३४

हे विद्वानो ! आप सब को मेरा नमस्कार हो ।

२९०. मा मा हि ँ सिष्ट ।—५।३४

हे विद्वानो ! मेरी हिंसा मत करो, मुझे नष्ट मत करो, मुझ सताओ मत ।

२९१. ज्योतिरसि विश्वरूपम् ।—५।३५

हे परमेश्वर ! आप सब रूपों से युक्त सूर्य-चन्द्रमा आदि सबको प्रकाशित करनेवाली ज्योति हैं ।

२९२. अग्ने नय सुपथा राये ।—५।३६

सबको उत्तम मार्ग से ले चलनेवाले परमेश्वर ! मोक्ष-रूपी धन की प्राप्ति के लिए हम धार्मिक जनों को शम-दम आदि युक्त योगमार्ग पर चलाइए । हे प्रभो ! तू हमें ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए सुपथ से चला ।

२९३. विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।—५।३६

हे आनन्दप्रद परमेश्वर ! आप हमारे अच्छे और बुरे सभी कर्मों को जानते हैं ।

२९४. युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः ।—५।३६

हे परमेश्वर ! आप कुटिल, दुःख-फलरूपी पाप को हमसे दूर कीजिए ।

२९५. भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।—५।३६

हे परमेश्वर ! हम बारम्बार आपको नमस्कार करते हैं ।

२९६. उरु विष्णो विक्रमस्व ।—५।३८

हे विद्यादि गुणों में व्याप्त वीरपुरुष ! तू इस संसार में खूब पराक्रम कर ।

२९७. अत्यन्याँ अगान् ।—५।४२

मैं मूर्खों को लाँघकर आगे बढ़ गया हूँ ।

२९८. द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हि ँ्सीः पृथिव्या सम्भवः ।—५।४३

हे विद्वन् ! आकाश की ओर मत देख, अन्तरिक्ष की ओर मत जा, पृथिवी के साथ जुट जा, पृथिवी पर पराक्रम कर, पृथिवी-वासियों की समस्याओं को सुलझा ।

२९९. देव वनस्पते शतवल्शो वि रोह ।—५।४३

हे विद्वन् ! हे भक्तशिरोमणे ! तू सैकड़ों अंकुरोंवाले वृक्ष के सामान बढ़, फल और फूल ।

३००. सहस्रवल्शा वि वय ँ् रुहेम ।—५।४३

हम सहस्रों अंकुरवाले वृक्ष की भाँति बढ़ें, फूलें और फलें ।

३०१. अग्रेणीरसि ।—६।२

हे विद्वन् ! तू मानव-प्रजाओं का उन्नायक, उन्हें समुन्नत करनेवाला और उनका मार्गदर्शक है ।

३०२. देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु ।—६।२

हे मानव ! आनन्दप्रद और सर्वोत्पादक परमात्मा तुझे अपने आनन्द रस से सींचे ।

३०३. विष्णोः कर्माणि पश्यत ।—६।४

हे मनुष्यो ! सर्वव्यापक परमात्मा के सृष्टि-उत्पत्ति, पालन और संहार तथा कर्मफल प्रदानरूपी कर्मों को देखो ।

३०४. इन्द्रस्य युज्यः सखा ।—६।४

हे जीवात्मन् ! तू ऐश्वर्यशाली परमेश्वर का सदाचार युक्त योग्यतम सखा है ।

३०५. विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।—६।५

ज्ञानी लोग परमेश्वर के परमपद को निरन्तर देखते रहते हैं ।

३०६. परिवीरसि ।—६।६

हे परमेश्वर ! तू सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक है । हे मानव ! तू सब विद्याओं में व्याप्त होनेवाला है ।

३०७. उपावीरसि ।—६।७

हे परमेश्वर ! तू शरणागत प्रतिपालक है ।

३०८. रेवती रमध्वम् ।—६।८

हे उत्तम धनवाली सन्तानों ! विद्या और उत्तम शिक्षा में रमण करो। देवी सम्पदाओं ! तुम मेरे गृह में रमण करो ।

३०९. बृहस्पते धारया वसूनि ।—६।८

हे वेद के विद्वान् वेदपते ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त विविध धनों, ऐश्वर्यों, पदार्थों को धारण कीजिए ।

३१०. पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्षा मानुषः ।—६।८

हे शिष्य ! शास्त्रों का मनन करनेवाला मैं तुझे अविद्या के बन्धन से छुड़ाता हूँ । तू विद्या और अच्छी शिक्षाओं में प्रगल्भ, दृढ़ हो ।

३११.अपां पेरुरसि ।—६।१०

हे शिष्य ! तू वीर्य की रक्षा करनेवाला है । हे मानव ! तू प्रजापालक है ।

३१२. सं ते प्राणो वातेन गच्छताम् ।—६।१०

हे शिष्य ! तेरे प्राण पवित्र वायु के साथ उत्तमता से रमण करें अर्थात् तू शुद्ध पवित्र वायु में प्राणायाम का अभ्यास कर ।

३१३. घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाम् ।—६।११

हे यज्ञ करने और करानेवाले ! तुम दोनों गौ आदि पशुओं की रक्षा करो ।

३१४. रेवति यजमाने प्रियं धाः ।—६।११

हे यज्ञ करानेवाले ! प्रिय सुख को ऐश्वर्ययुक्त यजमान में स्थापित करो ।

३१५. माहिर्भूर्मा पृदाकुः ।—६।१२

हे मानव ! तू सर्प के समान कुटिलमार्ग-गामी और भेड़िया के समान हिंसक अथवा अजदाह के समान आलसी मत बन ।

३१६. आतानानर्वा प्रेहि ।—६।१२

हे विस्तार चाहनेवाले मानव ! तू अश्व आदि सवारी के बिना, अपने भुज-बल के आधार पर स्वावलम्बी बनकर आगे बढ़ ।

३१७. ऋतस्य पथ्या अनु ।—६।१२

हे मानव ! तू सत्य के मार्गों का अनुसरण कर ।

३१८. वाचं ते शुन्धामि ।—६।१४

हे शिष्य ! में विविध शिक्षाओं द्वारा तेरी वाणी को धर्मानुकूल बनाता हूँ ।

३१९. प्राणं ते शुन्धामि ।—६।१४

हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं द्वारा तेरे प्राण=जीवन-शक्ति को निर्मल बनाता हूँ ।

३२०. चक्षुस्ते शुन्धामि ।—६।१४

हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं द्वारा तेरे नेत्रों को, तेरी दर्शन-शक्ति को पवित्र करता हूँ ।

३२१. श्रोत्रं ते शुन्धामि ।—६।१४

हे शिष्य ! मैं वैदिक शिक्षाओं के द्वारा तेरी श्रवण-शक्ति को पवित्र करता हूँ ।

३२२. चरित्रांस्ते शुन्धामि ।—६।१४

हे शिष्य ! मैं तेरे चरित्र=समस्त व्यवहारों को पवित्र अर्थात् धर्मानुकूल बनाता हूँ ।

३२३. मनस्त आप्यायताम् ।—६।१५

हे शिष्य ! सुशिक्षा के द्वारा तेरा मन विविध गुणों से युक्त हो ।

३२४. वाक्त आप्यायताम् ।—६।१५

हे शिष्य ! तेरी वाणी माधुर्य आदि गुणों से युक्त हो ।

३२५. प्राणस्त आप्यायताम् ।—६।१५

हे शिष्य ! तेरे प्राण, तेरी जीवन-शक्ति बल आदि गुणों से युक्त हो ।

३२६. चक्षुस्त आप्यायताम् ।—६।१५

हे शिष्य ! तेरे नेत्र=दर्शन-शक्ति स्नेह एवं निर्मलता आदि गुणों से युक्त हो ।

३२७. श्रोत्रं त आप्यायताम् ।—६।१५

हे शिष्य ! तेरे कर्ण=श्रवण-शक्ति भद्रश्रवण आदि गुणों से युक्त हो ।

३२८. यदास्थितं तत्त आप्यायताम् ।—६।१५

हे शिष्य ! जो तेरा संकल्प है, वह पूर्ण हो ।

३२९. ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ।—६।१५

हे विज्ञानप्रवर अध्यापक ! आप इस शिष्य की रक्षा कीजिए और व्यर्थ

इसकी ताड़ना मत कीजिए। हे प्रशस्त अध्यापिके ! तू इस कुमारिका शिष्य की रक्षा कर और व्यर्थ में इस की ताड़ना मत कर।

३३०. अहं रक्षोऽभितिष्ठामि।—६।१६

मैं राक्षसों=परार्थ का नाशकर स्वार्थ-सिद्धि करनेवाले दुष्टों को पैरों तले रौंदता हूँ।

३३१. अहं रक्षोऽधमं तमो नयामि।—६।१६

मैं दुष्टों को दुःसहः दुःख को पहुँचाता हूँ।

३३२. घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथाम्।—६।१६

हे पितः ! मातः ! तुम दोनों अपनी सन्तान को स्नेह, तेज और ज्ञानज्योति से आच्छादित रखो।

३३३. वायो वे स्तोकानाम्।—६।१६

हे सदसद् विवेकी, गुणग्राहक विद्यार्थिन् ! तू सूक्ष्म-से-सूक्ष्म व्यवहारों को जान।

३३४. आपः प्रवहतावद्यं च मलं च यत्।—६।१७

हे सर्वविद्याव्यापक विद्वान् लोगो ! जैसे जल मलों को दूर करते हैं, ऐसे ही आप मेरे निन्दनीय कर्म और विकार तथा अविद्यारूपी मल को बहा दीजिए, दूर कर दीजिए।

३३५. सं प्राणः प्राणेन गच्छताम्।—६।१८

हे शिष्य ! तेरा जीवन आचार्य के जीवन के अनुकूल होना चाहिए।

३३६. रेडसि।—६।१८

हे शूरवीर ! तू काम-क्रोधादि आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं का नाशक है।

३३७. अग्निष्ट्वा श्रीणातु।—६।१८

हे शिष्य ! आचार्य तेरी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक-शक्तियों को परिपक्व करे।

३३८. आपस्त्वा समरिणन्।—६।१८

हे शिष्य ! आत्मप्रेरणाएँ तुझे सदा प्रेरित और तरंगित करती रहें।

३३९. घृतं घृतपावानः पिबत।—६।१९

हे घृतपान करनेवालो ! तुम घी, दूध, दही आदि पदार्थों का सेवन तथा अमृतात्मक जल का पान करो।

३४०. वसां वसापावानः पिबत ।—६।१६

हे नीति के पालन करनेवाले वीर पुरुषो ! तुम वीर रस की वाणी, शत्रुओं का स्तम्भन करनेवाली वाणी का पान=सेवन करो । हे वसा पान करनेवालो ! तुम सुवास=सुगन्धयुक्त खाद्य पदार्थों का सेवन करो ।

३४१. समुद्रं गच्छ स्वाहा ।—६।२१

हे मनुष्य ! तू जलयान आदि के द्वारा समुद्र में जा, समुद्रयात्रा कर, देश-विदेश में भ्रमण कर । तू आत्मसाधना द्वारा समुद्र के समान गहन व गम्भीर बन।

३४२. अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा ।—६।२१

हे मनुष्य ! तू विमान आदि के द्वारा अन्तरिक्ष, लोक-लोकान्तरों में गमन कर ।

३४३. देवं सवितारं गच्छ स्वाहा ।—६।२१

हे मनुष्य ! तू वेदवाणी और सत्संग के द्वारा सर्वप्रकाशक, आनन्दप्रद और सकल जगदुत्पादक परमेश्वर को जान ।

३४४. मनो मे हार्दि यच्छ ।—६।२१

हे परमेश्वर ! मेरे मन को प्रीतियुक्त सत्यधर्म में स्थिर कर ।

३४५. दिवं ते धूमो गच्छतु ।—६।२१

हे मनुष्य ! तेरा यश द्युलोक तक फैल जाए ।

३४६. स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण ।—६।२१

हे मानव ! तू आनन्द और ज्योति से युक्त होकर पृथिवी को, पृथिवी-निवासी जन-जन को आनन्द और ज्योति से आपूर कर दे, भर दे ।

३४७. मापो मौषधीर्हिंसीः ।—६।२२

न तो मनुष्यों की हिंसा करो और न ओषधियों की । न जलों=जलाशयों कूप, तालाब, बावड़ी आदि को नष्ट न करो न ओषधियों—अन्न, फल, फूल, जड़ी-बूटियों को नष्ट करो ।

३४८. सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु ।—६।२२

हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से जल और ओषधियाँ हमारे लिए श्रेष्ठ मित्र के समान हों ।

३४९. हविष्माँ अस्तु सूर्यः ।—६।२३

सूर्यलोक सुगन्धादि युक्त होकर हमारे लिए सुखदायक हो ।

३५०. ऊर्ध्वमिममध्वरम् ।—६।२५

हे मानव ! विश्वयज्ञ को=मानवनिर्माण यज्ञ को निरन्तर ऊँचा रखना, इसे आगे बढ़ाते जाना।

३५१. दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ।—६।२५

हे मानव ! तू स्वयं दिव्यता में, दिव्य गुणों में स्थित रहता हुआ मानव-जीवनों में शुद्ध-पवित्र विचारों की हवियाँ होमते रहना।

३५२. शृणोतु देवः सविता हवं मे ।—६।२६

सर्वोत्पादक, दिव्यगुणयुक्त परमात्मा मेरी पुकार को सुने।

३५३. रावासि ।—६।३०

हे राजन् ! आचार्य ! तू सम्पत्तियों का धन-ऐश्वर्यों का, विद्याओं और सुशिक्षाओं का प्रदाता है।

३५४. मनो मे तर्प्पयत ।—६।३१

हे नागरिको ! तुम अपने गुणों से मेरे मन को तृप्त करो।

३५५. वाचं मे तर्प्पयत ।—६।३१

हे सभ्यजनो ! तुम अपनी सत्य, प्रिय एवं हितकर वाणी से मेरी वाणी को तृप्त करो।

३५६. प्राणं मे तर्प्पयत ।—६।३१

हे प्रजाजनो ! तुम मेरे प्राण को तृप्त करो।

३५७. चक्षुर्मे तर्प्पयत ।—६।३१

हे नागरिको ! तुम अपने श्रेष्ठ कर्मों से मेरे नेत्रों को तृप्त करो।

३५८. श्रोत्रं मे तर्प्पयत ।—६।३१

हे प्रजाजनो ! तुम अपनी कीर्ति से मेरे कानों को तृप्त करो।

३५९. आत्मानं मे तर्प्पयत् ।—६।३१

हे प्रजाजनो ! तुम अपने उत्तम व्यवहारों से मेरे आत्मा को तृप्त करो।

३६०. प्रजां मे तर्प्पयत ।—६।३१

हे नागरिको ! तुम सब अपने गुणों से मेरी प्रजा को तृप्त करो।

३६१. पशून् मे तर्प्पयत ।—६।३१

हे प्रजाजनो ! आप मेरे गौ, घोड़े आदि पशुओं को तृप्त करो।

३६२. गणान्मे तर्प्पयत ।—६।३१

हे प्रजाजनो ! आप मेरे सेवकों को तृप्त करो ।

३६३. गणा मे मा वि तृषन् ।—६।३१

[राजा की कामना है—] मेरे राज्याधिकारी और प्रजाजन कभी उदास न हों ।

३६४. यजमानायोरु राये कृधि ।—६।३३

प्रभो ! यजमान के लिए ऐश्वर्य सम्पादनार्थ मुझे विशाल ज्ञान-ज्योति प्रदान कर ।

३६५. अधि दात्रे वोचः ।—६।३३

प्रभो ! आत्मसमर्पक के लिए आप सदा आदेश और उपदेश देते रहना ।

३६६. ऊर्जं धत्स्व ।—६।३५

हे मानव ! पराक्रम, साहस धारण कर, साहसी बन ।

३६७. पाप्मा हतो न सोमः ।—६।३५

पाप, अपराध नष्ट हों, सोम=धर्म नहीं, धर्म की जय हो ।

३६८. सर्वास्त्वा दिश आ धावन्तु ।—६।३६

हे मानव ! इतना महान् बन कि सभी दिशाओं में रहनेवाले तेरे प्रति दौड़कर आएँ, तेरी ओर आकृष्ट हों ।

३६९. अम्ब निष्पर ।—६।३६

मातः ! प्रभो ! मुझे प्यार कर ।

३७०. समरीर्विदाम् ।—६।३६

मैं इतना महान् बनूँ कि सारी प्रजाएँ मुझे जानें ।

३७१. वाचस्पतये पवस्व ।—७।१

वेदवाणी के स्वामी परमेश्वर के प्रति पवित्र रह ।

३७२. देवो देवेभ्यः पवस्व ।—७।१

हे मानव ! तू स्वयं देव बनकर देवों के प्रति पवित्र रह ।

३७३. मधुमतीर्न इषस्कृधि ।—७।२

हे प्रभो ! हमारी इच्छाओं को मधुमय बना दे । हे विद्वन् ! राजन् ! आप हम लोगों के लिए मधुर, स्वादिष्ट अन्न आदि पदार्थ प्रदान कीजिए, अथवा उत्पादन कराइए ।

३७४. स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।—७।२

मैं सत्य वाणी और विशाल हृदय-अन्तरिक्ष को प्राप्त होता हूँ।

३७५. स्वाङ्कृतोऽसि ।—७।३

तू स्वयंकृत, स्वयं अपने जीवन का निर्माता है।

३७६. अन्तर्यच्छ ।—७।४

हे योगमार्ग के पथिक ! तू अन्तः=अन्तःकरण चतुष्टय, इन्द्रिय और प्राणों को वश में रख।

३७७. मघवन् सोमं पाहि ।—७।४

हे योगैश्वर्यसम्पन्न योगिन् ! तू धर्म की रक्षा कर। तू योग द्वारा प्राप्त यौगिक सिद्धियों की रक्षा कर। वीर्य की रक्षा कर। आनन्द प्रदान करनेवाले पठन-पाठनरूप यज्ञ की रक्षा कर।

३७८. उरुष्य रायः ।—७।४

हे योगिन् ! तू आत्मैश्वर्यों की वृद्धि कर।

३७९. एषो यजस्व ।७।४

हे साधक ! तू अपनी इच्छाओं को यज्ञीय=शुभ, परोपकारमय बना।

३८०. अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधामि ।—७।५

हे जीव ! मैं परमेश्वर ब्रह्माण्ड की भाँति तेरे पिण्ड=शरीर में द्युलोक और पृथिवीलोक को स्थापित करता हूँ।

३८१. उपो ते अन्धो मद्यमयामि ।—७।७

वाचस्पते ! वेदोपदेशक ! मैं तेरे लिए आनन्दप्रद अन्न और जल प्रस्तुत करता हूँ।

३८२. राया वय ँ् ससवाꣳ सो मदेम ।—७।१०

हे नीरक्षीर विवेकी विद्वज्जनो ! हम धन से, धन के वितरण से अत्यन्त हर्षित हों।

३८३. एष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ।—७।१०

हे मानव ! तुझे यह शरीर संसार में सदाचार और मानवता की स्थापना के लिए मिला है।

३८४. सुवीरो वीरान् प्रजनय ।—७।१३

हे योगिन् ! तू उत्तम-उत्तम गुणयुक्त मनुष्यों का निर्माण करते हुए सर्वत्र भ्रमण कर। हे वीर ! तू विश्व में सर्वत्र वीरों को समुत्पन्न करता हुआ विचर।

३८५. शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ।—७।१३

हे योगिन् ! तू शान्तिदायक शम-दम आदि गुणयुक्त और योगबल का आधार है।

३८६. सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।—७।१४

हम बल और ऐश्वर्य के दाता हों।

३८७. सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा ।—७।१४

वैदिक संस्कृति सर्वप्रथम और विश्व के सभी मानवों से वरणीय है।

३८८. वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाः ।—७।१६

ज्ञानी जन भूवासियों को शुभकर्मों में प्रेरित करें।

३८९. प्रजाः पाहि ।—७।१७

हे वाचस्पते ! वेदोपदेशक ! तू अपने आदर्श जीवन से मनुष्यों की रक्षा कर।

३९०. अपमृष्टो मर्कः ।—७।१७

हे वाचस्पते ! तेरे साधनामय जीवन से संसार का अन्याय, अनाचार, दुराचार नष्ट हो जाए।

३९१. पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिम् ।—७।२०

हे राजन् ! आप यज्ञ की, तथा श्रेष्ठ कर्म करनेवाले यजमान की रक्षा करो।

३९२. अभि सवनानि पाहि ।—७।२०

वाचस्पते ! तू जीवन यज्ञों की सर्वतः रक्षा कर।

३९३. एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ।—७।२१

हे वाचस्पते ! तुझे यह शरीर=मानव-जीवन मानवों की सेवा और दिव्यताओं का विस्तार करने के लिए मिला है।

३९४. एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ।—७।२५

हे मानव ! यह जीवन तुझे संसार का नेतृत्व, मार्गदर्शन करने के लिए मिला है।

३९५. न इन्द्र इद्वशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ।—७।२५

सब दुःखों का नाश करनेवाला परमेश्वर ही हम प्रजाजनों को दुःखों से रहित और एक मन, एक-दूसरे को सुख पहुंचानेवाला करे।

३९६. **देवानामुत्क्रमणमसि ।—७।२६**

विद्वन् ! तू दिव्यताओं, दिव्यगुणों का प्रकाश, प्रचार, प्रसार और संचार करनेवाला है ।

३९७. **कोऽसि ।—७।२९**

तू कौन है ? तू कः=आनन्द है ।

३९८. **कस्यासि ।—७।२९**

हे मानव ! तू आनन्दस्वरूप प्रभु का अमृत पुत्र है ।

३९९. **भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम् ।—७।२९**

हे सच्चिदानन्द ! मैं सुसन्तानों के द्वारा श्रेष्ठ सन्तानोंवाला होऊँ। मैं प्रजाओं से सुप्रजावान् बनूं ।

४००. **एष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ।—७।३१**

हे मानव ! यह जीवन तुझे आत्मजागरण और ज्ञानप्रसार के लिए मिला है ।

४०१. **विश्वे देवास आ गत ।—७।३४**

हे समस्त विद्वान् लोगो ! आप हमारे समीप आइए ।

४०२. **शृणुता म इमं हवम् ।—७।३४**

हे विद्वानो ! मेरी इस प्रकार, इस निवेदन को सुनो ।

४०३. **इह ते हुवेम ।—७।३६**

हम इसी जीवन में उस प्रभु को पुकारें, उसी की स्तुति और प्रार्थना करें।

४०४. **जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्व ।—७।३७**

हे सेनापते ! तू सत्य और न्याय के विरोध में प्रवृत्त हुए संग्रामकारी दुष्टजनों का विनाश कर ।

४०५. **अभयं कृणुहि विश्वतो नः ।—७।३७**

हे सेनापते ! हमारे लिए सर्वत्र, सब दिशाओं में निर्भयता सम्पादन कीजिए।

४०६. **ऋतस्य पथा प्रेत ।—७।४५**

हे मनुष्यो ! सत्य, न्याय, धर्म, संयम और सदाचार के मार्ग पर चलो ।

४०७. **स्वः पश्य ।—७।४५**

अपने आप को देखो, अपने-आपको जानो, आत्मनिरीक्षण करो ।

४०८. **यतस्व सदस्यैः ।—७।४५**

साथियों के साथ हिल-मिलकर साधना करो ।

४०९. सोऽमृतत्वमशीय ।—७।४७

वह मैं मुक्ति के साधनों को प्राप्त करूँ । मैं मुक्ति के आनन्द को भोगूँ ।

४१०. कोऽदात्कस्मा अदात् ।—७।४८

कौन कर्मफल देता है, और किसके लिए देता है ।

४११. कामोऽदात्कामायादात् ।—७।४८

जिसकी सब कामना करते हैं, वही परमेश्वर कर्मफलप्रदाता है और कामना करनेवाले जीव के लिए कर्मफल प्रदान करता है ।

४१२. कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र ।—८।२

इन्द्र ! तू कभी भी छिपनेवाला नहीं है, सर्वत्र तेरा प्रकाश व्याप रहा है।

४१३. इन्द्र सश्चसि दाशुषे ।—८।२

परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ! तू दानशील आत्मसमर्पक को प्राप्त होता है ।

४१४. मघवन् भूय इन्नु ते दानम् ।—८।२

हे परमपूजित परमेश्वर ! आपके दान असंख्य हैं ।

४१५. कदाचन प्रयुच्छसि ।—८।३

मानव ! तू कैसे प्रमाद कर रहा है ?

४१६. उभे नि पासि जन्मनी ।—८।३

हे मानव ! तुझे लोक और परलोक दोनों की साधना करनी है ।

४१७. यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नम् ।—८।४

विद्वानों का यज्ञ=परोपकारमय कर्म, गृहस्थाश्रमरूपी व्यवहार निश्चय ही सुख प्राप्त कराता है । देवों का सत्संग सुख प्राप्त कराता है ।

४१८. आदित्यासो भवता मृडयन्तः ।—८।४

हे सूर्य के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान् विद्वानो ! आप मानव-समाज को सदा सुखी करते रहो ।

४१९. दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।—८।६

हे देव ! हमें प्रतिदिन अत्यन्त प्रशंसनीय सुख प्रदान कीजिए ।

४२०. वामभाजः स्याम ।—८।६

हे देव ! हम प्रशंसनीय कर्म करनेवाले बनें । हम दिव्यगुणों से समलंकृत होकर आत्मसौन्दर्य से सुभूषित रहें ।

४२१. वनोधा असि वनो मयि धेहि ।—८।७

देव ! तू अन्त:प्रेरक, सर्वद्रष्टा और सत्यधारक है, अतः मुझ में भी अन्त:-प्रेरणा कर, मुझे ज्ञानज्योति प्रदान कर, मुझमें सत्य की स्थापना कर ।

४२२. सुशर्मासि ।—८।८

हे मानव ! तु प्रशंसनीय गृहवाला, आदर्श गृहस्थाश्रमी बन ।

४२३. बृहदुक्षाय नमः ।—८।८

महान् सुख-वर्षक परमेश्वर के लिए वारम्बार नमस्कार हो ।

४२४. सोमं पिब स्वाहा ।—८।१०

हे साधक ! तू प्रभु को समर्पित होकर उसके आनन्द रस का पान कर । तू धर्म का सेवन कर । तू गृहस्थ-सुख का सेवन कर, गृहस्थ का आनन्द भोग ।

४२५. प्रजापतिर्वृषासि ।—८।१०

संसार का पालनकर्त्ता परमेश्वर नाना प्रकार के सुखों का वर्षक है ।

४२६. देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।—८।१३

हे परमेश्वर ! आप दानशील के अपराध के विनाश करनेवाले हैं ।

४२७. आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।—८।१३

हे सर्वव्यापकेश्वर ! आप आत्मकृत पाप, मल के शोधक हैं ।

४२८. एनस एनसोऽवयजनमसि ।—८।१३

प्रभो ! आप पाप-पाप के, प्रत्येक कुसंस्कार, कुवासना और बुराई के शोधक हैं ।

४२९. यजमानाय द्रविणं दधातु ।—८।१७

हे गृहस्थो ! यजमान के लिए धन प्राप्त कराओ ।

४३०. अस्मे धत्त वसवो वसूनि ।—८।१८

हे उत्तम गुणों में रमण करनेवाले, सबको बसानेवाले जनो ! आप हमारे लिए नाना प्रकार के धनों को प्राप्त कराओ ।

४३१. असुं घर्म्मं ँ स्वरातिष्ठतानु ।—८।१९

हे गृहस्थो ! तुम लोग अन्न और यज्ञ, श्रेष्ठ बुद्धि, प्राणशक्ति के द्वारा अत्यन्त सुख को प्राप्त करो, मोक्षानन्द के भागी बनो ।

४३२. प्रजानन् यज्ञमुपयाहि ।—८।२०

हे ज्ञानानुष्ठान करनेवालो ! तुम जानकर, यज्ञ की क्रियाओं और मर्यादाओं का ज्ञान प्राप्त करके यज्ञ का सम्पादन करो ।

४३३. गातुं वित्त्वा गातुमित ।—८।२१

अनन्त पथ के पथिको ! तुम मार्ग को जानकर गमनीय=जानेयोग्य मार्ग पर चलो, श्रेयमार्ग के पथिक बनो ।

४३४. स्वां योनिं गच्छ ।—८।२२

हे साधक ! अपने स्वरूप में, आत्मस्वरूप में अवस्थित रह ।

४३५. नमो वरुणाय ।—८।२३

सर्वश्रेष्ठ, वरणीय परमेश्वर को नमस्कार हो ।

४३६. अभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ।—८।२३

न्यायकारी परमेश्वर के न्यायपाश सब ओर स्थित हैं ।

४३७. दमे दमे समिधं यक्ष्यग्ने ।—८।२४

हे तेजस्विन् ! घर-घर में प्रत्येक जीवरूपी समिधा को अपनी संगति से प्रज्वलित कर !

४३८. प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् ।—८।२४

हे साधक ! तेरी जिह्वा जन-जन के प्रति, प्रत्येक मनुष्य के प्रति स्नेह उंडेले ।

४३९. सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।—८।२५

हे यज्ञशील ! तुझ में ओषधि=दोष-प्रक्षालन तथा आपः=शीतलता और पवित्रतारूप गुण प्रवेश करें ।

४४० देवानां समिदसि ।—८।२७

तू विद्वानों के मध्य में अत्यन्त तेजस्वी है । तू दिव्यताओं का संदीपक=प्रदीप्त करनेवाला है ।

४४१. यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति ।—८।३६

उस परमात्मा से बढ़कर दूसरा कोई पैदा नहीं हुआ है ।

४४२. अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।—८।३८

हम में हो तेज और पराक्रम ।

४४३. वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ।—८।३८

हे परमेश्वर ! विचारशील मनुष्यों में मैं प्रशंसनीय विद्याध्ययन करनेवाला होऊँ ।

४४४. ओजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ।—८।३९

हे परमेश्वर ! साधारण जनों में मैं अत्यन्त पराक्रमशाली होऊँ ।

४४५. भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ।—८।४०

हे परमेश्वर ! साधारण मनुष्यों में मैं विद्या आदि से अत्यन्त प्रकाशमान् होऊँ ।

४४६. देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ।—८।४३

हे देवि ! तू उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिए मुझे उत्तम उपदेश दिया कर ।

४४७. वि न इन्द्र मृधो जहि ।—८।४४

हे सेनापते ! तू दुष्ट शत्रुओं को मार डाल । आत्मन् ! हिंसक वासनाओं को नष्ट कर ।

४४८. नीचा यच्छ पृतन्यतः ।—८।४४

हे सेनापते ! तू फ़िसाद करनेवाले नीचों को अपने वश में कर । आत्मन् ! तू वासनाओं की सेनाओं का दमन कर ।

४४९. अधरं गमया तमः ।—८।४४

आत्मज्योते ! तू पाप, अधर्म, अविद्या-अन्धकार को परे धकेल दे ।

४५०. स नो विश्वानि हवनानि जोषत् ।—८।४५

वह सर्वव्यापक परमेश्वर ! हमारे समस्त समर्पणों को प्रेमपूर्वक स्वीकार करे ।

४५१. इह रतिरिह रमध्वम् ।—८।५१

हे गृहस्थो ! इस गृहस्थ में आनन्द है, तुम इस गृहस्थाश्रम में रमण करो ।

४५२. सत्रस्य ऋद्धिरसि ।—८।५२

प्रभो ! तू हमारे जीवनरूपी यज्ञ की सिद्धि है, लक्ष्य है ।

४५३. अगन्म ज्योतिरमृता अभूम ।—८।५२

हम ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो गये हैं और मोक्ष के अधिकारी बन गये हैं । हमने परमात्मा का प्रकाश प्राप्त कर लिया है और अमर हो गये हैं ।

४५४. दिवं पृथिव्या अध्यारुहाम ।—८।५२

हम पार्थिव भोगों, काम-किलोलों से ऊपर उठकर मोक्ष में स्थित हो गये हैं ।

४५५. अविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ।—८।५२

हमने दिव्य-गुण, आनन्द-सम्पदा और ज्ञान-ज्योति प्राप्त कर ली है।

४५६. देवान्दिवमगन्यज्ञः ।—८।६०

हम लोग विद्या के प्रकाश और दिव्य भोगों को प्राप्त करानेवाले यज्ञ को प्राप्त हों।

४५७. धर्मो अप्येतु देवान् ।—८।६१

यज्ञ विद्वानों को निश्चय ही प्राप्त होकर सब मानवों का कल्याण करे और संसार में दिव्यगुणों का संचार करे।

४५८. रायस्पोषं विश्वमायुरशीय ।—८।६२

मैं धन आदि पदार्थों की समृद्धि और दीर्घजीवन को प्राप्त करूँ।

४५९. वाजं गोमन्तमा भर ।—८।६३

प्रभो! हमें आध्यात्मिक रश्मियों से युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करा।

४६०. देव सवितः प्रसुव यज्ञम् ।—९।१

हे दिव्यगुणयुक्त, ऐश्वर्यशाली राजन्! आप यज्ञ का खूब प्रचार कीजिए। हे शुद्ध ज्ञान प्रदाता और योगसिद्धियों को उत्पन्न करनेवाले प्रभो! आप हमारे जीवनों में यज्ञ=सुख को उत्पन्न कीजिए।

४६१. केतपूः नः केतं पुनातु ।—९।१

ज्ञान-शोधक धर्मात्मा लोग हमारे ज्ञान को पवित्र करें। विज्ञान के द्वारा पवित्र करनेवाला परमेश्वर हमारे ज्ञान को पवित्र करें।

४६२. वाचस्पतिर्वाजं न स्वदतु ।—९।१

अध्यापक और उपदेश हमारे अन्न को प्रसन्नतापूर्वक भोगें।

४६३. सं मा भद्रेण पृङ्क्तम् ।—९।४

हे राज-प्रजा पुरुषो! मुझे सेवन करने योग्य सुखदायक ऐश्वर्य के साथ संयुक्त करो। मेरे मस्तिष्क और हृदय! तुम दोनों मुझे भद्र=कल्याणकारक आचार-विचार से संयुक्त रखो।

४६४. वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ।—९।४

हे राज-प्रजा पुरुषो! तुम दोनों मुझे पाप और पापी पुरुषों से पृथक् करो। मेरे मस्तिष्क और हृदय! मुझे पाप से, पापमय जीवन से, दुराचार से पृथक् रखो।

४६५. नो देवः सविता धर्म साविषत् ।—९।५

सबका प्रकाशक, सब जगत् का उत्पादक परमात्मा हमारा धारण करें, हमें धर्म का सेवन कराए ।

४६६. अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।—९।६

जलों में अमृत=जीवन तत्त्व और रोग-निवारक औषध है ।

४६७. अश्वा भवत वाजिनः ।—९।६

हे मनुष्यो ! तुम अन्न से समृद्ध एवं शक्ति से पूर्ण बनो ।

४६८. वातरँहा भव वाजिन् ।—९।८

हे शक्तिशालिन् ! तू वायु के समान वेगशाली बन ।

४६९. आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ।—९।८

हे मानव ! विश्वकर्मा परमपिता परमात्मा तेरे पैरों में गति प्रदान करे ।

४७०. बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम् ।—९।१०

मैं प्रकृति आदि पदार्थों के रक्षक जगदीश्वर के सबसे उत्तम, दुःखों से रहित सच्चिदानन्दस्वरूप को प्राप्त होऊँ ।

४७१. बृहस्पते वाजं जय ।—९।११

हे विद्वन् ! तू जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त कर ।

४४२. बृहस्पतये वाचं वदत ।—९।११

हे विद्वानों ! आप राजपुरुषों के लिए वेदवाणी का उपदेश करो ।

४६३. इन्द्र वाजं जय ।—९।११

शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाले इन्द्र ! संग्राम विजय कर ।

४७४. शन्नो भवन्तु वजिनो हवेषु ।—९।१६

युद्धविद्याविशारद वीरपुरुष और घोड़े संग्रामों में हमारे लिए कल्याणकारक हों ।

४७५. मध्वः पिबत मादयध्वम् ।—९।१८

हे ब्रह्मज्ञानियों ! ब्रह्मरस का पान करो और तृप्त होकर आनन्दित होओ ।

४७६. यात पथिभिर्देवयानैः ।—९।१८

हे मनुष्यो ! सदा विद्वानों के मार्ग पर चलो, महापुरुषों के पदचिह्नों का अनुसरण करो ।

४७७. आयुर्यज्ञेन कल्पताम् ।—६।२१

हे मनुष्यो ! अपनी आयु को यज्ञ=ईश्वर आज्ञापालन से समर्थ बनाओ।

४७८. प्राणो यज्ञेन कल्पताम् ।—६।२१

हे मनुष्यो ! अपनी जीवन-शक्ति को धर्मयुक्त व्यवहार और विद्याभ्यास से समर्थ बनाओ ।

४७९. चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम् ।—६।२१

हे मनुष्यो ! अपनी नेत्र-ज्योति को निर्मल दृष्टि द्वारा समर्थ बनाओ ।

४८०. श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् ।—६।२१

हे मनुष्यो ! अपनी नेत्र-ज्योति को वेदाभ्यास से समर्थ बनाओ ।

४८१. प्रजापतेः प्रजा अभूम ।—६।२१

हम सबके पालन करनेवाले परमात्मा की योग्य सन्तानें बनें ।

४८२. स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम ।—६।२१

हम विद्वान् बनकर जीवन-मरण के चक्र से छूट मोक्ष-सुख को अच्छी प्रकार प्राप्त होवें ।

४८३. अस्मे नृम्णमुत क्रतुः ।—६।२२

हममें शक्ति, धन तथा बुद्धि और कर्म आदि गुणों का विकास हो ।

४८४. अस्मे वर्चांऽसि सन्तु ।—६।२२

हममें विद्या, अन्न और तेज हो।

४८५. नमो मात्रे पृथिव्यै ।—६।२२

मान्य की हेतु, विस्तारयुक्त भूमि से हमें अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हों, अथवा मातृभूमि के लिए हमारे हृदय में आदर-सत्कार और श्रद्धा की भावना हो ।

४८६. यन्तासि यमनः ।—६।२२

हे मनुष्य ! तू नियम से चलनेवाला और प्रचण्ड उद्योगी है ।

४८७. ध्रुवोऽसि धरुणः ।—६।२२

हे मानव ! तू दृढ़ और धर्म को धारण करनेवाला है ।

४८८. वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ।—६।२३

सबके हितकारी, सबके अगुआ हम लोग राष्ट्र में आलस्य छोड़कर सदा जागते रहें, सावधान रहें ।

४८९. इन्द्रं दानाय चोदय।—९।२७

हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आप ऐश्वर्य सम्पन्न मनुष्य को दान देने की प्रेरणा कीजिए।

४९०. अग्ने अच्छा वदेह नः।—९।२८

हे विद्वन् ! आप हमें इस संसार-सागर से पार होने के लिए उत्तम सत्योपदेश कीजिए।

४९१. प्रति नः सुमना भव।—९।२८

हे विद्वन् ! आप हमारे प्रति मित्रभावयुक्त हूजिए।

४९२. प्र वाग्देवी ददातु नः।—९।२९

दिव्य गुणों से विभूषित माता पुत्रों को सदा सत्यविद्या युक्त वेदवाणी का उपदेश किया करे।

४९३. अग्ने सहस्व पृतनाः।—९।३६

हे विद्वन् ! राजन् ! आप शत्रु सेना को, फ़िसादियों को कुचल डालिए।

४९४. हतं रक्षः स्वाहा।—९।३८

मैंने आत्मसाधना के द्वारा काम-क्रोधादि शत्रुओं को मार भगाया है।

४९५. अनाधृष्टाः सीदत सहौजसः।—१०।४

हे प्रजाओ ! तुम सब अदम्य और ओजस्वी होकर स्थिति रहो।

४९६. प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः।—१०।१४

दुष्ट चोर, देश-द्रोही, भ्रष्टाचारी का सिर काट दिया जाए।

४९७. मृत्योः पाहि।—१०।१५

हे राजन् ! विद्वन् ! आप मुझे मृत्यु से बचाइए।

४९८. ओजोऽसि सहोस्यमृतमसि।—१०।१५

हे मानव ! तू पराक्रमशाली, बलवान् और अमृत=नाशरहित है।

४९९. मित्रोऽसि वरुणोऽसि।—१०।१६

हे विद्वन् ! तू सबके लिए सुख-प्रदाता है और सब विद्याओं में सबसे उत्तम है। अथवा हे मानव ! तू सबसे स्नेह करनेवाला और सब प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ है।

५००. दिद्यून् पाहि।—१०।१७

हे राजन् ! आप विद्या और धर्म का प्रकाश करनेवाले व्यवहारों की निरन्तर रक्षा कीजिए।

५०१. वय ँ् स्याम पतयो रयीणाम् ।—१०।२०

प्रभो ! हम विद्या, धन-धान्य, राज्यादि ऐश्वर्य, लौकिक और पारलौकिक सम्पदा के स्वामी हों ।

५०२. इन्द्र ते वयम् ।—१०।२२

परमैश्वर्यशाली प्रभो ! हम तेरे हैं। राजन् ! हम तेरे हैं, तेरे प्रति निष्ठावान् हैं ।

५०३. अब्रह्मता विदसाम ।—१०।२२

हम राष्ट्र से नास्तिकता, अधार्मिकता, मूर्खता को नष्ट करें ।

५०४. मातर्मा हि ँ् सीर्मो अहं त्वाम् ।—१०।२३

हे माता ! कुशिक्षा से तू मुझे दुःख मत दे और मैं तुझे दुःख न दूँ । अथवा पृथिवी माता ! तू मेरी हिंसा मत कर और मैं तेरी हिंसा न करूँ ।

५०५. आयुरस्यायुर्मयि धेहि ।—१०।२५

हे परमेश्वर ! आप जीवनप्रदाता हैं, मुझे भी दीर्घजीवन प्रदान कीजिए ।

५०६. वर्चोऽसि वर्चो मयि धेहि ।—१०।२५

प्रभो ! आप स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं, मुझमें भी विद्या, सुशिक्षा, न्याय और धर्म का बल दीजिए ।

५०७. ऊर्गस्यूर्जं मयि धेहि ।—१०।३५

हे परमेश्वर ! आप अत्यन्त बलवान् और पराक्रमशाली हैं, मुझमें भी बल और पराक्रम धारण कीजिए ।

५०८. स्योनासि सुषदासि ।—१०।२६

हे नारि । तू सुखरूप और सुन्दर व्यवहार करनेवाली है ।

५०९. मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।—११।४

सर्वजगदुत्पादक और आनन्दप्रद जगदीश्वर की सब प्रकार की बड़ी स्तुति है, महान् महिमा है ।

५१०. शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः ।—११।५

अविनाशी परमात्मा के सब पुत्र वेदोपदेश सुनें ।

५१०. वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।—११।७

वाणी का स्वामी परमेश्वर वा विद्वान् हमारी वाणी को माधुर्ययुक्त एवं कोमल बनाए ।

५१२. इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय।—११।८

हे आनन्दप्रद एवं सर्वप्रेरक प्रभो ! हमारे जीवन-यज्ञ को भली-भाँति चला।

५१३. प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तीः।—११।१५

हे राजन् ! तू शत्रु-सेनाओं को मारता हुआ और शत्रु-देशों का उल्लंघन करता हुआ तीव्रता से आगे बढ़।

५१४. द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थम्।—११।२०

हे विद्वन् ! द्युलोक तेरी पीठ पर है, ज्ञान-ज्योति तेरी रक्षिका है और विनयशीलता तेरी सहायक है।

५१५. त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः।—११।२०

हे विद्वन् ! तू आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं के समक्ष डट जा।

५१६. उत्क्राम महते सौभगाय।—११।२१

हे विद्वन् ! महान् सौभाग्य के लिए उठ खड़ा हो, प्रबल पुरुषार्थ कर।

५१७. शर्म च स्थः।—११।३०

हे स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों गृहस्थाश्रम और उसकी सामग्री को प्राप्त हुए हो।

५१८. सीद होतः स्वे।—११।३५

हे दानशील ! तू सुख में स्थित हो अर्थात् दानशील को सुख मिलता है। योगिन् ! तू अपनी आत्मा में अवस्थित हो।

५१९. सꣳसीदस्व महाँ असि।—११।३७

तू महान् गुणों से युक्त विद्वान् है, अतः पढ़ाने की गद्दी पर आसीन हो।

५२०. शोचस्व देववीतमः।—११।३७

दिव्य गुणों से जाज्वल्यमान् ! तू सर्वत्र ज्योति का प्रसार कर।

५२१. अपो देवीरुपसृज मधुमतीः।—११।३८

हे श्रेष्ठ वैद्य ! आप प्रशंसित मधुर आदि गुणयुक्त, पवित्र, आनन्दकारक जलों [नाना प्रकार के आसव, अरिष्ट, शर्बत आदि] का निर्माण कीजिए।

५२२. कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम्।—११।३९

हे आनन्दप्रद ! तुझ आनन्दमय के लिए हमारा सर्वस्व समर्पित हो।

५२३. वासो अग्ने विश्वरूपꣳसं व्ययस्व।—११।४०

हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! तू अनेक प्रकार के चित्र-विचित्ररूपी वस्त्रों को धारण कर।

५२४. उदु तिष्ठ स्वध्वर ।—११।४१

हे साधक ! संयमशील गृहस्थ ! तू पुरुषार्थ से निरन्तर उन्नति को प्राप्त हो ।

५२५. स्वध्वरावा नो देव्या धिया ।—११।४१

हे योगसाधक ! उत्तम व्यवहार करनेवाले विद्वन् गृहस्थ ! तू शुद्ध विद्या और सुशिक्षा से युक्त बुद्धि द्वारा हम लोगों की रक्षा कर ।

५२६. स्थिरो भव वीड्वङ्गः ।—११।४४

हे गतिशील ! तू स्थिर बन, धर्म और धैर्य को कभी मत त्याग । शरीर से बलिष्ठ और दृढ़ाङ्ग बन ।

५२७. आशुर्भव वाज्यर्वन् ।—११।४४

हे गतिशील ! तू शीघ्रकारी बन, आलसी मत बन । तू ऐश्वर्यशाली बन, दरिद्र मत बन ।

५२८. पृथुर्भव ।—११।४४

ब्रह्मचारिन् ! तू यशस्वी और सुख का विस्तार करनेवाला बन ।

५२९. सुषदस्त्वम् ।—११।४४

अर्वन् ! तू उत्तम जनों में, श्रेष्ठ पुरुषों में बैठनेवाला बन । महापुरुषों का सत्सङ्ग कर ।

५३०. शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यः ।—११।४५

हे प्राणों के समान प्रिय सन्तान ! तू मानव-प्रजाओं के लिए कल्याणकारी और मङ्गलमय बन ।

५३१. मा पाद्यायुषः पुरा ।—११।४६

हे विद्वन् ! तू नियत वर्षों की अवस्था से पूर्व मत मर ।

५३२. अग्न आ याहि वीतये ।—११।४६

हे परमात्मन् ! हमारे अज्ञान-अन्धकार का नाश करने और ज्ञान-प्रकाश करने के लिए हमारे हृदय-मन्दिरों में प्रकट हूजिए । अथवा हे विद्वन् ! सुखों की व्याप्ति के लिए हमें अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए ।

५३३. नो अप दुर्मतिं जहि ।—११।४७

हे विद्वन् ! हमारी दुर्मति और कुमति को दूर कर ।

५३४. बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।—११।४९

हे विद्वन् ! वैद्य ! आप द्वेषियों, हिंसकों और रोगों को दूर कीजिए ।

५३५. आपो हि ष्ठा मयोभुवः ।—११।५०

जलधारो ! तुम निश्चय ही सुखकारिणी हो ।

५३६. अदित्यै रास्नासि ।—११।५९

हे नारि ! तू विद्या-प्रकाश, विद्यावृद्धि के लिए दानशीला है ।

५३७. इन्द्रस्त्वा धूपयतु ।—११।६०

हे साधक ! परमेश्वर तुझे तपाकर, यम-नियम, संयम की भट्टी में तपाकर संशुद्ध करे ।

५३८. पृथिव्यामाशा दिश आपृण ।—११।६३

हे नारि ! तू अपनी अभिलाषाओं और कीर्ति से दशों दिशाओं को पूर्ण कर दे ।

५३९. उत्थाय बृहती भव ।—११।६४

हे नारि ! तू आलस्य को छोड़कर महापुरुषार्थयुक्त हो ।

५४०. प्रजापतये मनवे स्वाहा ।—११।६६

हम प्रजापालक मानव के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं ।

५४१. अम्ब धृष्णु वीरयस्व सु ।—११।६८

हे मातः ! दृढ़ता से सुन्दर आरम्भ किये कार्य की समाप्ति कर । मातृभूमि के नागरिको ! सहनशील बनकर पराक्रम करो ।

५४२. त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ।—११।६९

हे नारि ! तू संग करने योग्य गृहस्थाश्रम रूप यज्ञ में प्रकाश को प्राप्त हो, चमक, अपने यश का विस्तार कर ।

५४३. अग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ।—११।७५

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तेरे साक्षात्कार के लिए अन्तर्मुख रहनेवाले हम कभी हिंसित, पीड़ित, दुःखी न हों ।

५४४. स ँ शितं मे ब्रह्म ।—११।८१

मेरा [पुरोहित का] वेदज्ञान प्रशस्त=प्रशंसा के योग्य एवं सुतीक्ष्ण है ।

स ँ शितं वीर्यं बलम् ।—११।८१

मेरा बल और पराक्रम भी प्रचण्ड है ।

५४६. उन्नयामि स्वां अहम् ।—११।८२

[पुरोहित की घोषणा—] मैं अपने मित्रों के तेज और सामर्थ्य को उन्नत करता हूँ ।

५४७. ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।—११।८३

प्रभो ! हमारे दोपाये मनुष्य आदि और चार पैरवाले गौ आदि पशुओं को अन्न प्रदान कीजिए और उनमें पराक्रम का आधान कीजिए ।

५४८. द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति ।—१२।२

द्युलोक और भूलोक में [इनके मध्य में होने से अन्तरिक्ष लोक में भी] परम तेजस्वी परमेश्वर जगमगा रहा है ।

५४९. सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत ।—१२।४

मानव ! तू ज्ञान और कर्मरूपी पंखों से उड़नेवाला बाज है, अतः सुन्दर विज्ञान और सुख को प्राप्त कर, ज्योति प्राप्त कर, आनन्द में विचर ।

५५०. पुनर्नो नष्टमाकृधि ।—१२।८

हे विद्वन् ! आप हमारे नष्ट हुए विज्ञान को हमें पुनः प्रदान कीजिए ।

५५१. पुनर्नो रयिमाकृधि ।—१२।८

हे विद्वन् ! आप हमारी बिगड़ी हुई शोभा को, प्राचीन वैभव को, धन-धान्य को हमें पुनः प्राप्त कराइए ।

५५२. पुनर्नः पाह्यँ् हसः ।—१२।९

हे विद्वन् ! आप हमें पाप से बारम्बार बचाइए ।

५५३. अग्ने पिन्वस्व धारया ।—१२।१०

हे तेजस्विन् ! आप सम्पूर्ण विद्याओं को धारण करनेवाली वाणी द्वारा सुखों का सेवन कीजिए ।

५५४. ध्रुवास्तिष्ठाविचाचलिः ।—१२।११

हे राजन् ! तू ध्रुव और अविचल होकर संस्थित रह ।

५५५. विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु ।—१२।११

हे राजन् । सम्पूर्ण प्रजाएँ आपकी चाहना करें ।

५५६. मा त्वद् राष्ट्रमधि भ्रशत् ।—१२।११

हे राजन् ! आपके शासन से राज्य नष्ट-भ्रष्ट न हो ।

५५७. अनागसो अदितये स्याम ।—१२।१२

हम अविनाशी परमात्मा के प्रति निरपराध एवं पवित्र हों। हम पृथिवी पर निष्पाप होकर रहें।

५५८. त्वं हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ।—१२।१६

हे ज्ञानिन् ! तू अपनी ज्योति से प्रदीप्त होता हुआ प्राणिमात्र के लिए कल्याणकारी शिव बन।

५५९. सीद शिवस्त्वम् ।—१२।१७

हे विद्वन् ! तू कल्याणकारी बनकर संसार में निवास कर।

५६०. विद्मा ते नाम परमं गुहा यत् ।—१२।१९

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हम आपके बुद्धि में स्थित गुप्त, श्रेष्ठ नाम 'ओम्' को जानते हैं।

५६१. देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ।—१२।२९

हे शत्रुओं को जीतने की इच्छावाले विद्वानो ! आप हममें उस राज्यलक्ष्मी को स्थापित करो जिससे सुन्दर वीर पुरुष उत्पन्न हों।

५६२. आस्मिन् हव्या जुहोतन ।—१२।३०

हे गृहस्थो ! तुम लोग इस संसार में देने योग्य पदार्थों को अच्छी प्रकार दिया करो।

५६३. स नो भव शिवः ।—१२।३१

हे आत्माग्ने ! तू हमारे लिए कल्याणकारी हो।

५६४. मा हिँ सीस्तन्वा प्रजाः ।—१२।३२

हे विद्वन् ! तू अपने शरीर से प्राणियों की हिंसा मत कर।

५६५. अतिथिः शिवो नः ।—१२।३४

अतिथि हमारे लिए कल्याण करनेवाला हो।

५६६. अप्स्वग्ने सधिष्टव ।—१२।३६

प्रिय आत्मन् ! तेरी स्थिति कर्मों में है अर्थात् आत्मा कर्मानुसार विविध योनियों में जाता है।

५६७. युयोध्यस्मद् द्वेषाँसि ।—१२।४३

हे विद्वन् ! हमसे द्वेष और द्वेषयुक्त कर्मों को पृथक् कीजिए।

५६८. घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ।—१२।४४

हे मानव ! तू घृत आदि शक्ति प्रदान करनेवाले पदार्थों से अपने शरीर को बढ़ा, हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ बना ।

५६९. सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ।—१२।४४

यज्ञ, सत्सङ्ग और विद्वानों का सत्कार करनेवाले पुरुष की कामनाएँ पूर्ण हों।

५७०. अपेत वीत वि च सर्पत ।—१२।४५

हे मनुष्यो ! अधर्म से पृथक् रहो और धर्म को विशेष रूप से प्राप्त होओ तथा धर्म में ही विशेष रूप से गमन करो ।

५७१. ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ।—१२।४६

तुम श्रेष्ठ ज्ञानी हो, अतः देवाधिदेव परमात्मा का आश्रय लो । अथवा, तुम श्रेष्ठ ज्ञानी हो अतः बेसहारों के सहारे बनो । अथवा, हे मनुष्यो ! तुम उत्कृष्ट गुणों के सञ्चयकर्त्ता पुरुष का सेवन करो ।

५७२. स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ।—१२।५१

हमारा पुत्र प्रेरक और विजयशील हो अथवा, विविध ऐश्वर्यों का उत्पादक हो ।

५७३. लोकं पृण छिद्रं पृण ।—१२।५४

हे कन्ये ! तू संसार के प्राणियों को तृप्त एवं सुखी कर और उनके दोषों को दूर कर । अथवा हे मनुष्य ! तू विश्व की रिक्तता को पूर दे और छिद्रों= दोषों को भर दे ।

५७४. सीद ध्रुवा त्वम् ।—१२।५४

शारीरिक, आत्मिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों से सम्पन्न होकर तू संसार में निश्चल एवं निर्द्वन्द्व होकर विराज, स्थित हो ।

५७५. इषमूर्जं यजमानाय धेहि ।—१२।५८

हे परमेश्वर ! आप यजमान को अन्न आदि उत्तम पदार्थ तथा शारीरिक और आत्मिक बल प्रदान कीजिए ।

५७६. नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ।—१२।६२

जीवन को चमकाकर कुन्दन बनानेवाली भीषण आपत्ते ! तुझे नमस्कार है, तेरा सुस्वागत है ।

५७७. नमः सु ते नर्ऋते तिग्मतेजः ।—१२।६३

हे कृच्छ्रापत्ते ! भीषण विपद् ! हे दुःसह तेज ! तुझे नमस्कार है, तेरा स्वागत है। अथवा, हे परमेश्वर ! हे दुःसह तेज ! तुझे बारम्बार नमस्कार है।

५७८. अयस्मयं विचृता बन्धमेतम् ।—१२।६३

हे परमेश्वर ! कृच्छ्रापत्ते ! आप हमारे लोहे के समान दृढ़ जन्म-मरणरूपी बन्धन को काट दीजिए।

५७९. नमो भूत्यै येनेदं चकार ।—१२।६५

जिसने इस अखिल ब्रह्माण्ड की रचना की है, उस सर्वोत्पादक देव को नमस्कार हो।

५८०. कृते योनौ वपतेह बीजम् ।—१२।६८

हे मनुष्यो ! कर्मयोनि इस शरीररूपी खेत में पुण्यरूपी बीज बोओ।

५८१. कामं कामदुघे धुक्ष्व ।—१२।७२

हे इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली नारि ! तू इच्छाओं को पूर्ण कर।

५८२. अगन्म तमसस्पारम् ।—१२।७३

मोक्ष-प्राप्ति के लिए हम अविद्या-अन्धकार के पार पहुंच गये हैं।

५८३. ज्योतिरापाम ।—१२।७३

हमने ज्ञान-ज्योति, आत्म-ज्योति, परमात्म-ज्योति को प्राप्त कर लिया है।

५८४. यूयमिमं मे अगदं कृधि ।—१२।७६

हे मनुष्यो ! तुम मेरे शरीर को ओषधियों से नीरोग करो।

५८५. अश्वत्थे वो निषदनम् ।—१२।७९

हे मनुष्यो ! तुम्हारा निवास कल रहे या न रहे ऐसे क्षणभंगुर शरीर में है।

५८६. कस्मै देवाय हविषा विधेम ।—१२।१०२

हम आनन्दस्वरूप परमेश्वर के लिए श्रद्धा और प्रेम से विशेष भक्ति करें।

५८७. सोम दिवि श्रवाᳬस्युत्तमानि धिष्व ।—१२।११३

हे शान्तियुक्त पुरुष ! तू अपने मस्तिष्क में उत्तम ज्ञान-सम्पदाओं, श्रेष्ठ विचारों को धारण कर।

५८८. आ ते वत्सो मनो यमत् ।—१२।११५

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तेरा प्रिय पुत्र, भक्त तेरी प्रसन्नता प्राप्त करे।

५८६. सम्राडेको विराजति ।—१२।११७

विश्व ब्रह्माण्ड का एकमात्र सम्राट्, अद्वितीय परमेश्वर सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है ।

५६०. मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निम् ।—१३।१

प्रतिदिन प्रातःकाल में अपने अन्तःकरण अथवा हृदय में परमात्मा का ध्यान करता हूँ । अथवा, मैं अपने हृदय में मानवमात्र के प्रति प्रेम की अग्नि को संजोता हूँ ।

५६१. मामु देवताः सचन्ताम् ।—१३।१

मुझे उत्तम गुण निश्चय ही प्राप्त हों । श्रेष्ठ पुरुष मुझे अवश्य अपनाएँ ।

५६२. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे ।—१३।४

प्रकाशस्वरूप परमात्मा सृष्टि-निर्माण से पूर्व भी विद्यमान था ।

५६३. स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् ।—१३।४

वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा ही इस पृथिवी और द्युलोक को धारण करता है ।

५६४. नमोऽस्तु सर्पेभ्यः ।—१३।६

प्राणियों के लिए अन्न प्राप्त हो । अथवा, प्राणिमात्र का कल्याण हो ।

५६५. कृणुष्व पाजः ।—१३।६

हे सेनापते ! आत्मसाधक ! तू बल का, आत्मबल का संचय, संग्रह कर ।

५६६. विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ।—१३।६

हे सेनापते ! साधक ! तू राक्षसों, शत्रुओं, काम-क्रोध आदि वृत्रों को अत्यन्त दुःखदायी अस्त्र-शस्त्रों और कठोर तपश्चर्याओं द्वारा नष्ट कर दे ।

५६७. उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व ।—१३।१२

हे तेजस्वी राजन् ! आप राजधर्म में उन्नति को प्राप्त हूजिए और धर्मात्मा पुरुषों के लिए सुख का विस्तार कीजिए ।

५६८. न्यमित्राँ ओषतात् तिग्महेते ।—१३।१२

हे तीक्ष्णशस्त्रों से युक्त राजन् ! तू शत्रुओं को भस्म कर डाल ।

५६६. ऊर्ध्वो भव ।—१३।१३

ऊँचे उठो, महान् बनो ।

६००. प्र मृणीहि शत्रून् !—१३।१३

हे राजन् ! तू शत्रुओं को कुचल डाल ।

६०१. **ध्रुवासि धरुणा ।—१३।१६**

हे नारि ! तू निश्चला है तथा विद्या और अर्थ को धारण करनेवाली है ।

६०२. **अव्यथमाना पृथिवीं दृंह ।—१३।१६**

हे नारि ! तू व्यथित न होती हुई, आनन्दमयी रहती हुई पृथिवीवासियों को धन-धान्य, ऐश्वर्य और धर्मधन से समृद्ध बना ।

६०३. **देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।—१३।१९**

हे नारि ! तू दिव्यस्वरूप पति के साथ अत्यन्त प्रिय और निश्चल होके प्रतिष्ठायुक्त हो ।

६०४. **ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ।—१३।२१**

इष्ट सुखों को देनेवाली, शुभगुणों से शोभायमान प्रकाशयुक्त स्त्रि ! हम लोग देने योग्य पदार्थों से तेरी सेवा करें ।

६०५. **सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ।—१३।२६**

हे पत्नि ! तू अनेक प्रकार के सामर्थ्यों से युक्त है, वह तू मुझ पति को तृप्त किया कर ।

६०६. **माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।—१३।२७**

जौ, चावल आदि ओषधियाँ हमारे लिए मधुर=रसीली हों ।

६०७. **मधुमान्नो वनस्पतिः ।—१३।२९**

पीपल-वट आदि वनस्पतियाँ हमारे लिए मधुमय गुणोंवाली हों ।

६०८. **माध्वीर्गावो भवन्तु नः ।—१३।२९**

गौएँ, सूर्य-किरणें हमारे लिए माधुर्य गुणोंवाली हों ।

६०९. **अनु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ।—१३।३०**

हे मनुष्य ! तुझे शुद्ध गुणों से युक्त वर्षा प्राप्त होती रहे ।

६१०. **इषे राये रमस्व ।—१३।३५**

हे मनुष्य ! तू अन्न और धन की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ कर ।

६११. **सम्राडसि स्वराडसि ।—१३।३५**

हे महामानव ! तू शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक शक्तियों से दीप्त और आत्मप्रकाश से प्रकाशित है ।

६१२. **माभि मंस्थाः ।—१३।४१**

हे मानव ! अभिमान मत कर ।

६१३. शतायुषं कृणुहि चीयमानः ।—१३।४१

हे मानव ! श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर तू सौ वर्ष की अवस्था को प्राप्त कर। अथवा, स्वयं बुद्धि को प्राप्त होकर तू सौ वर्ष की अवस्थावाले सन्तानों को उत्पन्न कर।

६१४. हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिँसीः ।—१३।४२

ज्ञानिन् ! आनन्दरूपी बादलों के मूलस्रोत, अज्ञान के नाशक, अति मनोहर परमात्मा का त्याग मत कर।

६१५. गां मा हिँसीः ।—१३।४३

हे विद्वन् ! गाय को मत मार ! पृथिवी को नष्ट मत कर।

६१६. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।—१३।४६

सर्वान्तिर्यामी परमात्मा चेतन और जड़ जगत् का प्रकाशक है।

६१७. इमं मा हिँसीर्द्विपादं पशुम् ।—१३।४७

हे राजन् ! विद्वन् ! तू दो पैरवाले मनुष्य और पक्षी आदि तथा चार पैरवाले पशुओं को मत मार।

६१८. इमं मा हिँसीरेकशफं पशुम् ।—१३।४८

हे विद्वन् ! तू एक (बिना चिरे) खुरवाले घोड़े, गधे आदि पशुओं को मत मार।

६१९. अदितिं जनायाग्ने मा हिँसीः ।—१३।४९

हे राजन् ! तू जन-कल्याण के लिए गौ को मत मार।

६२०. त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि ।—१३।५२

हे बलवत्तम राजन् ! तू सुखदाता, धर्मरक्षक, विद्यादाता मनुष्य की रक्षा कर।

६२१. इयमुपरि मतिः ।—१३।५८

यह बुद्धि सर्वोपरि है।

६२२. स्योने सीद सदने ।—१४।२

हे सुख देनेवाली देवि ! तू अपने घर में स्थित हो।

६२३. ब्रह्म पीपिहि सौभगाय ।—१४।२

हे नारि ! तू सौभाग्य-वृद्धि के लिए वेद-मन्त्रों में निहित विज्ञान को प्राप्त कर। अथवा, सौभाग्य के लिए तू ब्रह्म=आनन्द-रस का पान कर।

६२४. प्राणं मे पाहि ।—१४।८

हे देवि ! तू मेरे प्राणवायु की रक्षा कर।

६२५. अपानं मे पाहि ।—१४।८

हे देवि ! तू मेरे अपान की रक्षा कर।

६२६. व्यानं मे पाहि ।—१४।८

हे देवि ! तू मेरे व्यान की रक्षा कर।

६२७. चक्षुर्म उर्व्या वि भाहि ।—१४।८

हे देवि ! तू मेरे नेत्रों को विविध प्रकार के ज्ञान से प्रकाशित कर।

६२८. श्रोत्रं मे श्लोकय ।—१४।८

हे नारि ! तू मेरे कानों को शास्त्रों के श्रवण से संयुक्त कर।

६२९. अपः पिन्वौषधीर्जिन्व ।—१४।८

हे स्त्रि ! तू प्रजाओं को पुष्ट कर और नाना प्रकार की ओषधियों को प्राप्त कर।

६३०. द्विपादव चतुष्पात् पाहि ।१४।८

हे नारि ! तू दो पैरवाले पक्षियों की रक्षा कर और चार पैरवाले प्राणियों को बचा।

६३१. इष्टकां दृँ हतं युवम् ।—१४।११

हे स्त्री-पुरुष ! तुम दोनों इष्टों के सिद्ध करनेवाले गृहस्थ को दृढ़ करो।

६३२. विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।—१४।१४

हे नारि ! तू सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर। तू सम्पूर्ण विवेक प्रदान कर।

६३३. आयुर्मे पाहि ।—१४।१७

हे स्त्रि ! तू मेरे जीवन की रक्षा कर।

६३४. चक्षुर्मे पाहि ।—१४।१७

हे देवि ! तू मेरी आँखों की रक्षा कर।

६३५. श्रोत्रं मे पाहि ।—१४।१७

हे नारि ! तू मेरे कानों की रक्षा कर।

६३६. वाचं मे पिन्व ।—१४।१७

हे देवि ! तू मेरी वाणी को सींच, मेरी वाणी में सरसता और कोमलता का सञ्चार कर दे। मेरी वाणी को उत्तम शिक्षा से युक्त कर।

६३७. मनो मे जिन्व ।—१४।१७
हे स्त्रि ! तू मेरे मन को तृप्त कर, मेरे मन को सदा प्रसन्न रख ।
६३८. आत्मानं मे पाहि ।—१४।१७
हे देवि ! तू मेरे आत्मा की रक्षा कर, मेरी आत्मा आत्मबल से युक्त रहे ।
६३९. ज्योतिर्मे यच्छ ।—१४।१७
हे स्त्रि ! तू मुझे ज्योति, विवेक प्रदान कर ।
६४०. अग्ने जातान् प्र णुदा नः सपत्नान् ।—१५।१
हे राजन् ! सेनापते ! आप हमारे प्रसिद्ध-प्रकट शत्रुओं को दूर कीजिए ।
६४१. अधि नो ब्रूहि सुमनाः ।—१५।१
हे राजन् ! प्रसन्नचित्त आप हमें अधिकारपूर्वक उपदेश दीजिए ।
६४२. प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्व ।—१५।६
जीवन में आचरित धर्म के द्वारा धर्म का सर्वत्र प्रचार और प्रसार कर ।
६४३. ऊर्जोर्जं जिन्व ।—१५।६
हे स्त्रि ! तू पराक्रम से बल को प्राप्त हो ।
६४४. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दन् ।—१५।२८
हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तप से देदीप्यमान योगी लोग हृदय-गुहा में स्थित तुझे आत्म-साधना से प्राप्त करते हैं ।
६४५. स जायसे मथ्यमानः ।—१५।२८
वह परमात्मा सतत मन्थन, उत्कट साधना से प्रकट होता है ।
६४६. स नो वसून्या भर ।—१५।३०
हे सुखैश्वर्यों की वृष्टि करनेवाले परमेश्वर ! तू हमारे लिए धन-धान्य आदि सकलैश्वर्य प्रदान कर ।
६४७. अस्मे धेहि जातवदो महि श्रवः ।—१५।३५
हे ज्ञानिन् ! आप हमारे लिए व्यापक यश, महान् ऐश्वर्य और अनेक प्रकार का धन-धान्य प्रदान कीजिए ।
६४८. तिग्म जम्भ रक्षसो दह प्रति ।—१५।३७
हे तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रयुक्त राजन् ! आप दुष्टजनों को भस्म कीजिए ।
६४९. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।—१५।३९
हे सुन्दर सम्पत्तिवाले पुरुष ! आप युद्ध में अपने मन को कल्याणकारी

विचारोंवाला बनाइए। अथवा, पापवासनाओं के विनाश के लिए अपने मन को भद्र भावनाओं से युक्त रखिए।

६५०. इषं स्तोतृभ्य आ भर।—१५।४१

हे परमात्मन्! तू अपने स्तोताओं के लिए इच्छाशक्ति=आत्मबल, सुख और अन्न आदि ऐश्वर्य प्रदान कर।

६५१. भवा नो अर्वाङ्।—१५।४६

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! हमारे समक्ष आ, हमारे हृदय-मन्दिर में प्रकट हो।

६५२. पथो देवयानान् कृणुध्वम्।—१५।५३

हे मनुष्यो! धार्मिकों के मार्ग से चलो और धर्म का अनुष्ठान करो।

६५३. उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि।—१५।५४

हे मेरे आत्माग्ने! तू जाग! प्रतिक्षण जाग्रत् रह। अथवा, हे विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष! तू जाग! अविद्यारूपी निद्रा को छोड़कर विद्या से चेतन हो जा।

६५४. आ रोहाथा नो वर्धया रयिम्।—१५।५६

हे प्रभो! तू हमारे हृदय-मन्दिर में उदित हो और हमारे आत्मैश्वर्य को बढ़ा।

६५५. विश्वं ज्योतिर्यच्छ।—१५।५८

प्रभो! तू समस्त मानव-प्रजाओं को ज्योति=विवेक प्रदान कर।

६५६. मा हिंसीः पुरुषं जगत्।—१६।३

हे राजपुरुष! तू पुरुषार्थयुक्त मनुष्य आदि संसार को मत मार।

६५७. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय।—१६।८

मधुर कण्ठ और शुद्ध स्वरवाले सेनापति के लिए अन्न प्राप्त हो, अथवा नमस्कार हो।

६५८. शिवो नः सुमना भव।—१६।१३

हे सेनापते! आप हमारे लिए प्रसन्नचित्त और मङ्गलकारी हूजिए।

६५९. मा नो वधीः पितरं मोत मातरम्।—१६।१५

हे सेनापते! तू हमारे पिता और हमारी माता को मत मार।

६६०. मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।—१६।१५

हे सेनापते! तू हम प्रजाजनों के प्रियजीवनों को क्षतिग्रस्त मत कर।

६६१. मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।—१६।१६

हे सेनापते ! तू हमारी गौओं और घोड़ों की हिंसा मत कर।

६६२. वनानां पतये नमः ।—१६।१८

वनों की रक्षा करनेवाले पुरुष का अन्न आदि द्वारा सत्कार करना चाहिए।

६६३. स्तेनानां पतये नमः ।—१६।२०

चोरों के सरदार को वज्र से मारना चाहिए। अथवा, चोरों को वश में करनेवाले के लिए नमस्कार हो।

६६४. तस्कराणां पतये नमः ।—१६।२१

तस्करों=चोरों के सरदार को वज्र से मारना चाहिए।

६६५. नमः शूराय चावभेदिने च ।—१६।३४

शूरवीर और व्यूह का भेदन करनेवाले सैनिक के लिए नमस्कार हो।

६६६. नमस्ताराय ।—१६।४०

दुःखों से पार उतारनेवाले पुरुष को नमस्कार हो, अथवा उसका अन्नादि से सत्कार करना चाहिए।

६६७. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च ।—१६।४१

स्वयं सुखस्वरूप और दूसरों को सुख देनेवाले परमेश्वर को नमस्कार हो।

६६८. नमः शंकराय च मयस्कराय च ।—१६।४१

स्वयं धर्म-कर्ता और अपने भक्तों को धर्म-कर्म में प्रवृत्त करनेवाले प्रभु को नमस्कार हो।

६६९. नमः शिवाय च शिवतराय च ।—१६।४१

स्वयं मोक्षस्वरूप और अपने भक्तों को मोक्ष देनेवाले प्रभु को नमस्कार हो।

६७०. मा भेर्मा रोक् ।—१६।४७

मत डर और मत रोगी बन।

६७१. विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नातुरम् ।—१६।४८

इस ब्रह्माण्ड में सभी प्राणी दुःख एवं रोगरहित होकर हृष्ट-पुष्ट एवं बलवान् हों।

६७२. नो मृड जीवसे ।—१६।४९

हे वैद्य ! जीने के लिए हमें सुखी कर।

६७३. भगवः पराचीना मुखा कृधि ।—१६।५३
हे भाग्यशील सेनापते ! तू शत्रुओं के मुख को फेर दे ।

६७४. पावको अस्मभ्य ँ शिवो भव ।—१७।४
हे सभापते ! पवित्रस्वरूप आप हमारे लिए मङ्गलकारी हूजिए ।

६७५. सेमं नो यज्ञं पावकवर्ण ँ शिवं कृधि ।—१७।६
हे विदुषि ! तू अग्नि के समान प्रकाशमान होकर गृहाश्रमरूप यज्ञ को कल्याणकारी बना दे ।

६७६. अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः ।—१७।७
हे राजन् ! सेनापते ! आपके वज्र हम लोगों से भिन्न दुष्टों को सन्तप्त करें ।

६७७. अग्ने देवाँ इहा वह ।—१७।९
हे राजन् ! तू विद्वानों को अपने राष्ट्र में ला ।

६७८. स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ।—१७।२१
अपने शरीर का निर्माण करते हुए तू स्वयं यज्ञ कर ।

६७९. स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।—१७।२२
तू स्वयं जमीन-आसमान एक कर, प्रबल पुरुषार्थ कर ।

६८०. इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ।—१७।२२
हे सभापते ! इस जगत् में हमारे प्रशंसित धनवान् पुरुष विद्वान् भी हों । अथवा, इस राष्ट्र में हमारा सूर्य के समान् तेजस्वी राजा पूजित धनों का स्वामी हो ।

६८१. न तं विदाथ य इमा जजान ।—१७।३१
हे मनुष्यो ! तुम उसे नहीं जानते जिसने इन लोकों, अखिल ब्रह्माण्डों का निर्माण किया है ।

६८२. जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ।—१७।३७
हे युद्ध की उत्तम सामग्री से युक्त सेनापते ! तू युद्ध के लिए, जीतनेवाले वीरों से घिरे हुए, पृथिवी, समुद्र और आकाश में चलनेवाले रथ पर आरूढ़ हो ।

६८३. मरुतो यन्त्वग्रम् ।—१७।४०
वायु के समान वेगवाले, बलवान् शूरवीर सेना के आगे-आगे चलें ।

६८४. **अस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।—१७।४३**

हमारे जो शस्त्र=शस्त्रधारी योद्धा हैं, वे विजयी हों।

६८५. **अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु ।—१७।४३**

हमारे उत्कृष्ट वीर संग्राम में विजयी हों। अथवा, हमारे वीर उच्चतर स्थिति में हों।

६८६. **अभि प्रेहि निर्दह ।—१७।४७**

हे क्षत्रिया वीराङ्गना ! आगे बढ़ और शत्रुओं को जला डाल।

६८७. **प्रेता जयता नरः ।—१७।४६**

हे नायको ! आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।

६८८. **इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।—१७।४६**

सेनापति तुम सैनिकों को सुख एवं संरक्षा प्रदान करे।

६८९. **उग्रा वः सन्तु बाहवः ।—१७।४६**

हे नायको ! तुम्हारे बाहु प्रचण्ड हों, शक्ति से सम्पन्न हों।

६९०. **अदितिः शर्म यच्छतु ।—१७।४८**

सदा जागरूक सेना हम नागरिकों के लिए सुख और सुरक्षा प्रदान करे।

६९१. **मर्माणि ते वर्मणा छादयामि ।—१७।४९**

हे शूरवीर सैनिक ! मैं [सेनापति] तेरे मर्मस्थलों को कवच से ढाँपता हूँ।

६९२. **जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ।—१७।४९**

हे शूरवीर ! दुष्टों पर विजय पाते हुए तुझे विद्वान् लोग उत्साहित करें।

६९३. **उदेनमुत्तरां नयाग्ने ।—१७।५०**

हे राजन् ! तू इस राष्ट्र को समुन्नत कर। अथवा, हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप यजमान को समुन्नत कीजिए।

६९४. **यज्ञमवन्तु देवीः ।—१७।५४**

देवियाँ यज्ञ की रक्षा करें।

६९५. **क्रमध्वमग्निना नाकम् ।—१७।६५**

हे मनुष्यो ! प्रबल पुरुषार्थ द्वारा मोक्षसुख को प्राप्त करो।

६९६. **विश्वा आशा दीद्यानो वि भाहि ।—१७।६६**

हे सभापते ! तू समस्त दिशाओं को अपने तेज से प्रकाशित करता हुआ विशेषरूप से चमक।

६९६. स्वर्ज्योतिरगामहम् ।—१७।६७

मैंने आनन्दमयी ज्योति=परमेश्वर को प्राप्त कर लिया है। अथवा, मैंने आनन्द और ज्योति को प्राप्त कर लिया है।

६९७. स्वर्यन्तु यजमानाः ।—१७।६९

यज्ञ करनेवाले यजमान मोक्षसुख को प्राप्त करें, करते हैं।

६९८. सुपर्णोऽसि ।—१७।७२

हे योगिन् ! तू ज्ञान और कर्मरूपी पंखों से मोक्ष की ओर गमन करनेवाला सुपर्ण है।

६९९. उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन् ।—१७।८७

तीव्रता के साथ योग-साधना में संलग्न योगिन् ! तू परमात्मा के आनन्दमय स्रोत का सप्रेम सेवन कर।

७००. स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ।—१७।८८

वृषभ ! सुख-वृष्टि करनेवाले ! यज्ञशेष का सेवन कर।

७०१. चतुः शृंगोऽवमीद् गौरः ।—१७।९०

चारों वेदों का विद्वान्, वेदवाणी में रमण करनेवाला विद्वान् उपदेश करे।

७०२. अस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।—१७।९८

हे विद्वानो ! हम लोगों में सत्य, सदाचाररूपी श्रेष्ठ धन को स्थापित करो।

७०३. स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।१

मेरा लौकिक सुख और मोक्ष-सुख परमेश्वर की उपासना द्वारा समर्थ हों।

७०४. बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।२

मेरा बल और पराक्रम धर्म के अनुष्ठान से समर्थ हों।

७०५. जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।३

मेरा बुढ़ापा और जवानी व्यायाम के अनुष्ठान से समर्थ हों।

७०६. सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।५

मेरे पुण्यकर्म और उसके साधन सत्य और धर्म के द्वारा समर्थ हों।

७०७. सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।६

मेरे सुदिन और श्रेष्ठ कर्म सत्य वचन बोलने आदि व्यवहारों से समर्थ हों।

७०८. यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।८

मेरी कीर्ति और उसकी प्राप्ति के साधन सुख-प्रदाता ईश्वर की उपासना से समर्थ हों।

७०९. सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।११

मेरी उत्तम बुद्धि और निष्ठा शम-दम आदि नियमों से युक्त योगाभ्यास से समर्थ हों।

७१०. भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।१४

मेरा ऐश्वर्य और उसकी प्राप्ति के साधन शिल्पविद्या द्वारा समर्थ हों।

७११. गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।—१८।१५

मेरा व्यवहार और क्रिया पुरुषार्थ के अनुष्ठान से समर्थ हों।

७१२. वाग्यज्ञेन कल्पताम् ।—१८।२९

मेरी वाणी मधुर सुसंस्कृत, सिद्ध एवं फलप्रद हो।

७१३. मनो यज्ञेन कल्पताम् ।—१८।२९

मेरा मन शुभचिन्तनरूप यज्ञ के द्वारा इष्ट-फलदायक हो।

७१४. आत्मा यज्ञेन कल्पताम् ।—१८।२९

मेरा आत्मा योग-साधनरूप यज्ञ के द्वारा सिद्ध और फलप्रद हो।

७१५. विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु ।—१८।३१

सब विद्वान् लोग हमारी रक्षा के लिए आएँ और हमारा पालन-पोषण करें।

७१६. विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ।—१८।३१

हम लोगों के लिए समस्त धन और अन्न प्राप्त हों।

७१७. विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ।—१८।३३

मैं अन्न आदि का अधिष्ठाता होकर समस्त दिशाओं को जीतूं।

७१८. वाजो देवान् हविषा वर्धयाति ।—१८।३४

अन्न लेने-देने और खाने से दिव्यगुणों को बढ़ाता है।

७१९. सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः ।—१८।३५

मैं अपने आपको पृथिवी के रस से सींचता हूँ, पुष्ट बनाता हूँ।

७२०. सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः ।—१८।३५

मैं जल और ओषधियों द्वारा अपना पोषण करता हूँ।

७२१. सोऽहं वाजं सनेयमग्ने ।—१८।३५

हे रसविद्या के ज्ञाता ! मैं अन्न का सेवन करूँ [मांस का नहीं]।

७२२. पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।—१८।३६

मेरे लिए, प्रत्येक नागरिक के लिए समस्त दिशाएं अत्यन्त सुखदामयी हों।

७२३. समुद्रोऽसि ।—१८।४५

हे विद्वन् ! तू समुद्र के समान गम्भीर और विद्यादि रत्नों से परिपूर्ण है।

७२४. रुचे जनाय नस्कृधि ।—१८।४६

हे परमेश्वर ! आप हमें प्रेम करनेवाले मनुष्यों के प्रति नियत करो।

७२५. रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु ।—१८।४८

हे परमेश्वर ! आप हमारे ब्राह्मणों में दीप्ति—ओज और तेज प्रदान करें।

७२६. रुच ँ् राजसु नस्कृधि ।—१८।४८

हे जगदीश्वर ! आप हमारे क्षत्रियों में भी दीप्ति—वीर्य और शौर्य प्रदान करें।

७२७. मयि धेहि रुचा रुचम् ।—१८।४८

हे प्रभो ! अपनी कृपा से मुझमें भी दीप्ति प्रदान कर।

७२८. उरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ।—१८।४६

हे बहुतों द्वारा प्रशंसनीय परमेश्वर ! आप हमारी आयु को मध्य में न काटें।

७२६. नमस्ते अस्तु मा मा हि ँ् सीः ।—१८।५३

हे विद्वन् ! मैं आपके प्रति नमन करता हूँ। आपका आदर-सत्कार करता हूँ आप मेरी हिंसा=ताड़ना न करें।

७३०. दिवो मूर्द्धासि ।—१८।५४

हे विद्वन् ! तू ज्ञानियों का शिरोमणि है।

७३१. अनु प्रेत सुकृतामु लोकम् ।—१८।५८

हे मनुष्यो ! मोक्ष चाहनेवाले सज्जनों के अभीष्ट मोक्षपद को ही प्राप्त करो।

७३२. त ँ् स्म जानीत परमे व्योमन् ।—१८।५६

हे मनुष्यो ! तुम परम उत्तम हृदयाकाश में व्याप्त उस परमात्मा को जानो।

७३३. एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः ।—१८।६०

हे विद्वानो ! आप परम उत्तम हृदयाकाश में व्याप्त सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को जानो। अपने हृदय-मन्दिर में उस परमदेव के दर्शन करो।

७३४. अग्निरस्मि जन्मनः ।—१८।६६

मैं जन्म से अग्नि के समान तेजस्वी हूँ।

७३५. घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।—१८।६६
मेरे नेत्रों में स्नेह और वाणी में माधुर्य है।
७३६. प्र नो जीवातवे सुव ।—१८।६७
हे परमेश्वर ! दिव्य जीवन के लिए आप हमें शुभकर्मों में प्रेरित कीजिए।
७३७. वि न इन्द्र मधो जहि ।—१८।७०
हे सेनापते ! तू संग्रामकारी शत्रुओं को मार डाल । अथवा, आत्मन् ! तू विनाशकारी वासनाओं को कुचल डाल ।
७३८. वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ।—१८।७१
हे सेनापते ! तू शत्रुओं को ताड़ित कर और संग्रामकारियों को जीतकर उन्हें अच्छे कर्मों में प्रेरित कर ।
७३९. अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।—१८।७४
हे ऐश्वर्यशालिन् ! आपकी कृपा से हम धन और श्रेष्ठ सन्तान को प्राप्त करें ।
७४०. अश्याम द्युम्नमजराजरं ते ।—१८।७४
हे अविनाशी परमेश्वर ! आपकी कृपा से हम लोग अक्षय धन और कीर्ति को प्राप्त करें ।
७४१. विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ।—१८।७६
सब विद्वान् लोग हमारे कल्याण के लिए यज्ञविद्या और योगविज्ञान की रक्षा करें ।
७४२. यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः ।—१८।७७
हे बलवत्तम राजन् ! तू समर्पित नागरिकों की रक्षा कर और उनकी पुकार=प्रार्थनाओं को सुन ।
७४३. सोमो य उत्तमं हविः ।—१९।२
जो प्रेम है, वही सर्वश्रेष्ठ हवि है ।
७४४. देव देवताः पिपृग्धि ।—१९।५
हे सुखदाता विद्वन् ! तू विद्वानों को प्रसन्न कर ।
७४५. रसेनान्नं यजमानाय धेहि ।—१९।५
हे विद्वन् ! तू धर्मात्मा जन के लिए रसीला अन्न प्रदान कर ।

७४६. सुरा त्वमसि शुष्मिणी ।—१९।७
हे माये ! तू बल का शोषण करनेवाली मदकारी सुरा है ।
७४७. एष ते योनिर्मोदाय त्वा ।—१९।८
हे मानव ! तुझे यह जीवन मिला है सदा प्रसन्न और प्रफुल्लित रहने के लिए ।
७४८. तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।—१९।९
हे परमेश्वर ! आप तेजस्वरूप हैं, मेरे जीवन में भी तेज का आधान कीजिए ।
७४९. वीर्यमसि वीर्यंमयि धेहि ।—१९।९
हे जगदीश्वर ! आप पराक्रमशाली हैं, मेरे जीवन में भी पराक्रम फूंकिए ।
७५०. बलमसि बलं मयि धेहि ।—१९।९
हे परमेश्वर ! आप बलस्वरूप हैं, मुझे भी बल प्रदान कीजिए ।
७५१. ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।—१९।९
हे प्रभो ! आप ओजस्वी हैं, मुझे भी ओज दीजिए ।
७५२. मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ।—१९।९
हे जगदीश्वर ! आप मन्यु=दुष्टों पर क्रोध करनेवाले हैं, मुझे भी दुष्टों पर क्रोध करने की सामर्थ्य दीजिए ।
७५३. सहोऽसि सहो मयि धेहि ।—१९।९
हे प्रभो ! आप सहनशील हैं, मुझे भी सहनशीलता प्रदान कीजिए ।
७५४. अग्ने अनृणो भवामि ।—१९।११
हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! मैं ऋण से उऋण होता हूँ ।
७५५. अहतौ पितरौ मया ।—१९।११
मेरे द्वारा माता-पिता पीड़ित एवं दुःखी न हों, सुखी हों ।
७५६. सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त ।—१९।११
हे विद्वानो ! आप संयुक्त करनेवाले हो, अतः मुझे कल्याण के साथ संयुक्त कीजिए ।
७५७. विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ।—१९।११
हे विद्वानो ! आप पाप से वियुक्त करनेवाले हो, अतः मुझे पाप से पृथक् कीजिए ।

७५८. वेद्या वेदिः समाप्यते ।—१९।१७

वेदि से वेदि प्राप्त की जाती है, पवित्र जीवन से पवित्र जीवन बनाया जाता है ।

७५९. यूपेन यूप आप्यते ।—१९।१७

खम्भे से खम्भा बाँधा जाता है । व्यक्ति से व्यक्ति को, परिवार से परिवार को और समाज से समाज को बाँधा जाता है ।

७६०. पशुभिः पशूनाप्नोति ।—१९।२०

सद्गृहस्थ पशुओं से पशुओं को प्राप्त करता है । अथवा, पशुता के विचारों से पशुत्व प्राप्त होता है ।

७६१. आप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः ।—१९।२९

मीठा और मधुर बोलने से मनुष्य को आशीर्वाद मिलता है ।

७६२. व्रतेन दीक्षामाप्नोति ।—१९।३०

मनुष्य ब्रह्मचर्यादि व्रतों के अनुष्ठान से दीक्षा को प्राप्त होता है । अथवा, सत्कर्म के अनुष्ठान से दीक्षा=योग्यता प्राप्त होती है ।

७६३. दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।—१९।३०

मनुष्य दीक्षा से प्रतिष्ठा और धन को प्राप्त करता है ।

७६४. दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति ।—१९।३०

मनुष्य दक्षिणा=प्रतिष्ठा से श्रद्धा को प्राप्त होता है ।

७६५. श्रद्धया सत्यमाप्यते ।—१९।३०

श्रद्धा से सत्यस्वरूप परमेश्वर अथवा धर्म की प्राप्ति होती है ।

७६६. पितरोऽमीमदन्त ।—१९।३६

हे अध्यापक लोगो ! आप आनन्दित होकर हमें भी आनन्दित कीजिए ।

७६७. पितरोऽतीतृपन्त ।—१९।३६

हे उपदेशक लोगो ! आप तृप्त होकर हमें भी तृप्त कीजिए ।

७६८. पितरः शुन्धध्वम् ।—१९।३६

हे गुरुजनो ! आप लोग शुद्ध होकर हमें भी शुद्ध कीजिए ।

७६९. पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः ।—१९।३७

चन्द्रमा के समान शान्त, ज्ञान देकर पालन करनेवाले पितर मुझे पवित्र करें ।

७७०. पुनन्तु मा पितामहाः ।—१६।३७

पितामह—दादा लोग मुझे पवित्र करें ।

७७१. पुनन्तु प्रपितामहाः ।—१६।३७

परदादा लोग मुझे पवित्र करें ।

७७२. अग्न आयूꣳषि पवसे ।—१६।३८

हे विद्वन् ! पितः ! पितामह ! प्रपितामह ! प्रभो ! आप हमारे जीवनों को पवित्र कीजिए ।

७७३. आ सुवोर्जमिषं च नः ।—१६।३८

हे विद्वन् ! प्रकाशस्वरूप प्रभो ! आप हमें पराक्रम, अन्न और इच्छाशक्ति प्राप्त कराइए ।

७७४. आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।—१६।३८

हे विद्वन् ! प्रभो ! आप हमें दूर और समीप बसनेवाले दुष्ट कुत्तों के समान मनुष्यों के सङ्ग से छुड़ा दीजिए ।

७७५. पुनन्तु मा देवजनाः ।—१६।३६

विद्वान्‌जन मुझे पवित्र करें ।

७७६. पुनन्तु विश्वा भूतानि ।—१६।३६

प्राणिमात्र मुझे पवित्र करें ।

७७७. जातवेदः पुनीहि मा ।—१६।३६

परमेश्वर मुझे पवित्र करे ।

७७८. पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव ।—१६।४०

दिव्यस्वरूप परमेश्वर ! अपनी निर्मल पवित्रता से मुझे पवित्र कर ।

७७९. यः पोता स पुनातु मा ।—१६।४२

पवित्रस्वरूप परमेश्वर मुझे पवित्र करे ।

७८०. माँ पुनीहि विश्वतः ।—१६।४३

हे प्रभो ! आप मुझे अन्तः-बाह्य सब ओर से पवित्र कीजिए ।

७८१. अग्निः प्रजां बहुलां मे करोतु ।—१६।४८

अग्नि के समान प्रकाशमान पति मेरे लिए बहुत सुख देनेवाली प्रजा को उत्पन्न करे ।

७८२. अन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ।—१६।४८

हे माता-पिता आदि लोगो ! आप हममें अन्न, दूध और पराक्रम धारण करो ।

७८३. नोऽवन्तु पितरो हवेषु ।—१६।४६

पिता आदि बड़े लोग संग्रामों में हमारी रक्षा करें ।

७८४. भद्रे सौमनसे स्याम ।—१६।५०

हम सर्वदा भद्र-भावना में रहें ।

७८५. त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।—१६।५२

प्रभो ! तू सरलतम मार्ग पर चलता है ।

७८६. रत्नमभजन्त धीराः ।—१६।५२

धीर पुरुष ही रत्न [कर्मों का श्रेष्ठ फल] पाते हैं ।

७८७. नः शं योररपो दधात ।—१६।५५

हे विद्वानो ! आप हम सब मानवों के लिए सुख, दुःख-विनाश=भद्रता और निर्मलता प्रदान करो ।

७८८. आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि ।—१६।५६

मैं पितरों को उत्तम सुख देनेवाला जानता हूँ ।

७८६. आ यन्तु नः पितरः सोम्यासः ।—१६।५८

चन्द्रमा के समान शान्त, शम, दम आदि गुणयुक्त पितरगण हमारे पास आएँ ।

७६०. सदः सदः सदत सुप्रणीतयः ।—१६।५६

हे मार्गदर्शक पितरो ! तुम घर-घर में विराजो, घर-घर में जाओ ।

७६१. मा हिंसिष्ट पितरः ।—१६।६२

हे पितरो ! हमारी हिंसा=ताड़ना न करो, हमें त्यागो मत ।

७६२. आगः पुरुषता कराम ।—१६।६२

मनुष्य होने के कारण हम त्रुटि कर बैठते हैं ।

७६३. रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।—१६।६३

हे पितरो ! आत्मसमर्पक मनुष्यों के लिए आत्मैश्वर्य प्रदान करो ।

७६४. वस्वः प्र यच्छत ।—१६।६३

धन का सु-दान करो । खूब दान दो ।

७९५. अद्धि त्वं देव प्रयता हवीᳬषि ।—१९।६६

हे विद्वन् ! तू प्रयत्न से साधे हुए खाने योग्य अन्नों का सेवन किया कर।

७९६. पितृभ्यो नमो अस्तु ।—१९।६८

पितरों=माता-पिता, दादा-दादी आदि के लिए सुसंस्कृत अन्न और नमस्कार हो।

७९७. विश्वा यदजय स्पृधः ।—यजु० १९।७१

हे आत्मन् ! सेनापते ! तूने स्पर्द्धा करनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं को, समस्त शत्रु-सेना को जीत लिया।

७९८. अश्रद्धामनृतेऽदधात् ।—१९।७७

परमात्मा ने अनृत=असत्य में अश्रद्धा को स्थापित किया है।

७९९. अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ् ।—१९।७३

हंस जलों से दुग्धपान कर लिया करता है।

८००. यशसे श्रियै शिखा ।—१९।९२

शिखा=चोटी यश और धन प्रदान करती हैं, यश और धन-प्राप्ति का कारण है।

८०१. पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।—१९।९४

पत्नी सुकर्म को धारण करती है।

८०२. मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ।—२०।२

हे राजन् ! तू प्रजा को मृत्यु और विद्युत्-अस्त्रों से बचा।

८०३. शिरो मे श्रीर्यशो मुखम् ।—२०।५

मेरा सिर मेरा सौन्दर्य है और मुख [प्रवचन] मेरा यश है।

८०४. जिह्वा मे भद्रम् ।—२०।६

हे मनुष्यो ! मेरी जिह्वा कल्याणकारक अन्नादि का सेवन करनेवाली और मधुर वचन बोलनेवाली है।

८०५. मनो मन्युः ।—२०।६

मेरा मन प्रचण्ड साहसी है।

८०६. स्वराड् भामः ।—२०।६

मेरा साहस अखण्डनीय है।

८०७. मित्रं मे सहः ।—२०।६

सहनशक्ति=धैर्य मेरा मित्र है ।

८०८. बाहू मे बलमिन्द्रियम् ।—२०।७

मेरी दोनों भुजाओं में बल और ऐश्वर्य है । अथवा, मेरी दोनों भुजाएँ और इन्द्रियाँ शक्तिसम्पन्न हैं ।

८०९. हस्तौ मे कर्म वीर्यम् ।—२०।७

मेरे हाथों में कर्म और पराक्रम है । अथवा, मेरे दोनों हाथ सत्कर्म-कुशल एवं सामर्थ्यवान् हैं ।

८१०. आत्मा क्षत्रमुरो मम ।—२०।७

मेरा आत्मा और हृदय दुःख से रक्षा करनेवाले हैं ।

८११. धर्मोऽस्मि विशि ।—२०।६

मैं प्रजाओं में साक्षात् धर्म ही हूँ ।

८१२. विशि राजा प्रतिष्ठितः ।—२०।६

राजा की स्थिति प्रजा पर निर्भर होती है ।

८१३. देवा देवैरवन्तु मा ।—२०।११

विद्वान् लोग दिव्य गुणों के द्वारा मेरी रक्षा करें और मुझे धर्म-मार्ग में उन्नत किया करें।

८१४. देव रिषस्पाहि ।—२०।१८

हे सुखदातः परमेश्वर ! आप हम लोगों की हिंसा से, पाप से रक्षा कीजिए ।

८१५. आपः शुन्धन्तु मैनसः ।—२०।२०

हे प्राण अथवा जल के समान निर्मल विद्वानो ! आप मुझे अपराध से पृथक् करके शुद्ध कीजिए ।

८१६. सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।—२०।२१

हमने सर्वोत्कृष्ट, ज्योतिस्वरूप चराचर के आत्मा परमेश्वर को प्राप्त कर लिया है ।

८१७. मा स ँ सृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ।—२०।२२

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! मुझे विद्या, प्रजा और धन से संयुक्त कर ।

८१८. वैश्वानरज्योतिर्भूयासम् ।—२०।२३

मैं संसार के सभी मनुष्यों की आत्माओं को प्रकाशित करनेवाली ज्योति बनूँ ।

८१६. विभून्कामान्व्यश्नवै ।—२०।२३

मैं बड़ी-बड़ी कामनाओं को प्राप्त करूँ । मेरी सभी कामनाएँ सिद्ध हों ।

८२०. बृहदिन्द्राय गायत ।—२०।३०

हे विद्वन् लोगो ! परमेश्वर के लिए बृहत् सामगान गाओ ।

८२१. जघान वृत्रं वि दुरो ववार ।—२०।३६

हे इन्द्र ! तेजस्विन् ! तू काम-क्रोध आदि अन्तः और बाह्य शत्रुओं को मार तथा विद्या और धर्म के द्वारों को खोल दे ।

८२२. आ यातु यज्ञमुप नो जुषाणः ।—२०।३८

हे विद्वान् ! आप प्रसन्न होते हुए हमारे यज्ञ में पधारिए ।

८२३. स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ।—२०।५०

पूजनीय शत्रुनाशक राजा हमारे लिए सुख प्रदान करे ।

८२४. सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।—२०।५१

ऐश्वर्यशाली राजा हमारे लिए सुखकारी हो ।

८२५. सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।—२०।५१

हम लोग उत्तम सामर्थ्य और पराक्रम के स्वामी हों, हम बलशाली बनें ।

८२६. इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोत ।—२०।५२

पिता के समान प्रजापालक राजा हमारे दूर और निकट के सब शत्रुओं को सब काल में हमसे पृथक् करे ।

८२७. यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।—२०।५४

हे वीर पुरुषो ! आप लोग सुखकारी उपायों से सदा हमारा पालन और रक्षण करो ।

८२८. दुहे कामान्त्सरस्वती ।—२०।६०

ज्ञानवती नारी कामनाओं को पूर्ण करती है ।

८२९. इन्द्र कर्मसु नोऽवत ।—२०।७४

हे ऐश्वर्यशाली विद्वन् ! आप श्रेष्ठ कर्मों में हमारी रक्षा करो ।

८३०. पावका नः सरस्वती ।—२०।८४

सरस्वती [वैदिक-संस्कृति] हमें पवित्र करनेवाली है ।

८३१. मे वरुण श्रुधि हवम् ।—२१।१

हे वरणीय परमेश्वर ! मेरी पुकार को सुनो ।

८३२. त्वामवस्युराचके ।—२१।१

हे परमेश्वर ! अपनी रक्षा का अभिलाषी मैं तुझे चाहता हूँ, तुझसे प्रेम करता हूँ।

८३३. वरुणेह बोधि ।—२१।२

हे वरणीय, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! आप इस संसार के भोग-विलास में डूबे हुए हम मनुष्यों को बोध प्रदान कीजिए।

८३४. विश्वा द्वेषाᳬसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ।—२१।३

हे विद्वन् ! तू हमसे सब द्वेषयुक्त कर्मों को छुड़ा दे।

८३५. त्वं नो अग्नेऽवमो भव ।—२१।४

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! तेजस्वी विद्वन् ! तू हमारी रक्षा करनेवाला हो।

८३६. अव यक्ष्व नो वरुणम् ।—२१।४

हे परमेश्वर ! विद्वन् ! आप हमारे जीवन में उत्तम गुणों का मेल कराओ।

८३७. सुहवो न एधि ।—२१।४

हे विद्वन् ! आप हमारे लिए श्रेष्ठ दान देनेवाले, सुखप्रदान करनेवाले और सरलता से बुलानेवाले हूजिए।

८३८. सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीम् ।—२१।७

हे मनुष्यो ! मैं छिद्र-रहित, दोष-रहित जीवनरूपी नौका पर चढ़ूँ अर्थात् मैं दोषरहित दिव्य-जीवन व्यतीत करूँ।

८३९. अस्मद् युवन्नमीवाः । २१।१०

हे वैद्य लोगो ! हमारे रोगों को दूर करो।

८४०. वाजे वाजेऽवत वाजिनो नः ।—२१।११

हे वैज्ञानिको ! आप प्रत्येक युद्ध और जीवन-संघर्ष में हमारी रक्षा करो।

८४१. यात पथिभिर्देवयानैः ।—२१।११

हे मनुष्यो ! तुम विद्वानों के द्वारा गमन करने योग्य श्रेष्ठ वैदिक मार्ग पर चलो।

८४२. इडाभिरग्निरीड्यः ।—२१।१४

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर वेदवाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य है।

८४३. आज्यस्य होतर्यज ।—२१।२९

हे यज्ञकर्त्तः ! तू घी का होम कर, घी से यज्ञ कर ।

८४४. स्वं महिमानमायजताम् ।—२१।४७

हे यज्ञशील ! अपने गौरव=बड़प्पन को प्राप्त कर ।

८४५. भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः ।—२१।६१

मनुष्य इस संसार में मधुर-भाषण के लिए भेजा गया है ।

८४६. सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ।—२१।६१

हे मनुष्य ! तू मधुरभाषी के प्रति मधुर बोला कर । अथवा, तू कथन करने योग्य सूक्तों=सुभाषित वचनों का ही कथन किया कर ।

८४७. तेजोऽसि शुक्रममृतम् ।—२२।१

हे विद्वन् ! स्वयं को पहचान । तू तेजस्वी है, पराक्रमशाली और स्वरूप से विनाशरहित है ।

८४८. आयुष्पा आयुर्मे पाहि ।—२२।१

हे विद्वन् ! तू आयु की रक्षा करनेवाला है, अतः तू अपनी आयु को दीर्घ करके मेरी आयु की भी रक्षा कर ।

८४९. त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथ संगच्छ ।—२२।३

हे मानव ! तू विश्वविख्यात, समस्त पदार्थों के नायक परमेश्वर को जान ।

८५०. अग्निꣳ स्तोमेन बोधय ।—२२।१५

हे विद्वन् ! योगिन् ! यज्ञाग्नि को ईंधनसमूह से चिताओ, खूब प्रदीप्त करो । स्तुति के द्वारा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को अपने आत्मा में चिताओ, प्रदीप्त करो ।

८५१. अग्निं दूतं पुरो दधे ।—२२।१७

मैं दुःखविनाशक, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को सदा अपने सम्मुख रखता हूँ ।

८५२. इह रन्तिरिह रमताम् ।—२२।१९

यहाँ [गृहस्थ में, राष्ट्र में] रमणीयता है, यहाँ रमण करो ।

८५३. इह धृतिरिह स्वधृतिः ।—२२।१९

यहाँ [गृहस्थ में, राष्ट्र में] धैर्य हो और हो स्वधारण सामर्थ्य ।

८५४. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।—२२।२२

हे महतो महान् परमेश्वर ! हमारे राज्य में वेदविद्या में निष्णात, वेद और ईश्वर को जाननेवाले ब्राह्मण उत्पन्न हों ।

८५५. आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
—२२।२२

हमारे राष्ट्र में बाण चलाने में प्रवीण, शत्रुओं को पीड़ित करनेवाले शूरवीर महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों।

८५६. दोग्ध्री धेनुः ।—२२।२२

हमारे राष्ट्र में खूब दूध देनेवाली गौएँ हों।

८५७. वोढानड्वानाशुः सप्तिः ।—२२।२२

हमारे राष्ट्र में भार ढोने में समर्थ बैल और शीघ्रगामी घोड़े हों।

८५८. पुरन्धिर्योषा ।—२२।२२

हमारे राष्ट्र में नारियाँ नगर की रक्षा करने में समर्थ हों।

८५९. जिष्णू रथेष्ठाः—२२।२२

हमारे राष्ट्र में रथ पर स्थित वीर विजयशील हों।

८६०. निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।—२२।२२

हमारे राष्ट्र में जब-जब हम कामना करें तब-तब मेघ जल वर्षाएँ।

८६१. फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।—२२।२२

ओषधियाँ हमारे लिए उत्तम फलवाली होकर पकें।

८६२. योगक्षेमो नः कल्पताम् ।—२२।२२

हमारा सर्वविध योग=अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और क्षेम=प्राप्त वस्तु की रक्षा हो।

८६३. अन्नमत्त देवाः ।—२३।८

हे विद्वानो ! तुम अन्न का भक्षण करो।

८६४. कः स्विदेकाकी चरति ।—२३।९

अकेला कौन विचरता है ?

८६५. सूर्य एकाकी चरति ।—२३।१०

सूर्य बिना सहाय अपनी कक्षा में चलता है।

८६६. क उ स्विज्जायते पुनः ।—२३।९

बार-बार कौन उत्पन्न होता है ?

८६७. चन्द्रमा जायते पुनः ।—२३।१०

चन्द्रमा बार-बार, नित्य नये रूप में उत्पन्न होता है। चन्द्रशील=भोग-

विलास में मस्त मनुष्य बार-बार उत्पन्न होता है ।

८६८. कि ँ स्विद्धिमस्य भेषजम् ।—२३।९

शीत की, अज्ञान की औषधि क्या है ?

८६९. अग्निर्हिमस्य भेषजम् ।—२३।१०

अग्नि शीत की दवा है, ज्ञान अज्ञान की औषधि है ।

८७०. किं वावपनं महत् ।—२३।९

बीज बोने का बहुत बड़ा स्थान कौन-सा है ?

८७१. भूमिरावपनं महत् ।—२३।१०

पृथिवी बीज बोने का बहुत बड़ा स्थान है । शरीर-बीज बोने=शुभाशुभ कर्म करने का बहुत बड़ा स्थान है ।

८७२ नमोऽग्नये ।—२३।१३

ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिए नमस्कार हो । विद्या से प्रकाशमान, चारों वेदों के पढ़े हुए विद्वान् के लिए अन्न देना चाहिए ।

८७३. स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व ।—२३।१५

हे बोध चाहनेवाले ! तू व्यायाम आदि द्वारा स्वयं अपने शरीर को समर्थ बना ।

८७४. स्वयं यजस्व ।—२३।१५

हे शक्तिशालिन् ! तू स्वयं यज्ञ कर, स्वयं विद्वानों से मेल कर ।

८७५. स्वयं जुषस्व ।—२३।१५

हे जिज्ञासो ! तू स्वयं जुट जा, तू स्वयं कार्यक्षेत्र में कूद, अपने जौहर दिखा ।

८७६. महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ।—२३।१५

हे शक्तिशालिन् ! तेरी महिमा दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं कराई जा सकती है और न दूसरे के द्वारा मिटाई जा सकती है ।

८७७. अध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ।—२३।२३

हे निश्छल ! निष्पाप ! तू हम लोगों के प्रति झूठ मत बोला कर, अथवा व्यर्थ बातें मत किया कर ।

८७८. ब्रह्मन् मा त्वं वदो बहु ।—२३।२५

हे वेदों के ज्ञाता सज्जन ! ज्ञानिन् ! तू बहुत मत बोला कर ।

८७९. सुरभि नो मुखा करत् ।—२३।३२

हे परमेश्वर ! हमारे मुखों को सुगन्धियुक्त, सत्यप्रिय और मधुर-भाषण से युक्त कर ।

८८०. प्र ण आयूंषि तारिषत् ।—२३।३२

हे परमेश्वर ! राजन् ! हमारी आयुओं को उनकी अवधि के पार पहुँचाओ ।

८८१. कस्त्वा छ्यति ।—२३।३९

हे विद्यार्थिन् ! कौन तेरे पढ़ने में विघ्न करता है ?

८८२. कस्त्वा विशास्ति ।—२३।३९

हे विद्यार्थिन् ! कौन तुझे विविध शास्त्रों का उपदेश करता है ?

८८३. मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ।—२३।४१

हे विद्यार्थिन् ! उत्तम अध्यापक तेरे थोड़े-से भी दुर्व्यसन को दूर करें ।

८८४. वायुष्छिद्रं पृणातु ते ।—२३।४३

हे विद्यार्थिन् ! प्राणायाम की क्रिया तेरी प्रत्येक इन्द्रिय को सुख प्रदान करे ।

८८५. शम्वस्तु तन्वै तव ।—२३।४४

हे विद्यार्थिन् ! तेरे शरीर के लिए सब प्रकार से सुख हो ।

८८६. किं स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः ।—२३।४७

हे विद्वन् ! सूर्य के समान प्रकाशमय ज्योति कौन-सी है ?

८८७. ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः ।—२३।४८

हे जिज्ञासो ! परमेश्वर सूर्य के समान स्वप्रकाशस्वरूप ज्योति है ।

८८८. किं समुद्रसमं सरः ।—२३।४७

हे विद्वन् ! समुद्र के समान तालाब कौन-सा है ?

८८९. द्यौः समुद्रसमं सरः ।—२३।४८

हे जिज्ञासो ! अन्तरिक्ष और हृदय समुद्र के समान बड़ा तालाब है ।

८९०. किं स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः ।—२३।४७

हे विद्वन् ! पृथिवी से भी बड़ा क्या है ?

८९१. इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् ।—२३।४८

हे जिज्ञासो ! आत्मा पृथिवी से भी बड़ा है ।

८९२. कस्य मात्रा न विद्यते ।—२३।४७

हे विद्वन् ! किसकी तुलना नहीं है ?

८९३. गोस्तु मात्रा न विद्यते ।—२३।४८

हे जिज्ञासो ! गौ=वाणी और गाय की तुलना नहीं है।

८९४. केष्वन्तः पुरुष आ विवेश ।—२३।५१

हे वेदज्ञ विद्वन् ! परमेश्वर किन के भीतर प्रविष्ट है।

८९५. पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश ।—२३।५२

हे जिज्ञासो ! परमात्मा पञ्चभूत और उनकी तन्मात्राओं में व्याप्त है।

८९६. शश आस्कन्दमर्षति ।—२३।५६

विद्वान् खरगोश के समान कूदता हुआ चलता है।

८९७. अहिः पन्थां वि सर्पति ।—२३।५६

सर्पवत् कुटिल पुरुष मार्ग में रेंग-रेंगकर चलता है।

८९८. सप्तहोतार ऋतुशो यजन्ति ।—२३।५८

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और आत्मा=ये सात लेने-देने आदि व्यवहार के कर्ता ऋतु-ऋतु में संगत होते हैं।

८९९. अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।—२३।६२

यह यज्ञ संसार की नाभि है, केन्द्र है, बन्धन-स्थान है।

९००. होतर्यज ।—२३।६४

हे होतः ! यज्ञ कर। परमात्मा की उपासना कर, विद्वानों की संगति कर, दान दे।

९०१. यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु ।—२३।६५

हे प्रजापते ! जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले होकर हम आपका आश्रय लें, हमारी वह-वह कामना पूर्ण हो।

९०२. जिह्वाया उत्सादम् ।—२५।१

हे मनुष्यो ! जीभ से उखाड़ने के व्यापार की शिक्षा लो।

९०३. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः ।—२५।१४

हम लोगों को चारों ओर से श्रेष्ठ विचार प्राप्त हों।

९०४. देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम् ।—२५।१५

विद्वानों की कल्याण करनेवाली श्रेष्ठ बुद्धि हमें सब प्रकार से प्राप्त हो।

९०५. देवाना ᳬ रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।—२५।१५

विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान हम लोगों को सब गुणों से पूर्ण करे।

६०६. देवाना ँ सख्यमुपसेदिमा वयम् ।—२५।१५

हम विद्वानों की मित्रता को प्राप्त करें, विद्वानों की संगति में बैठें ।

६०७. सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।—२५।१६

समस्त विद्याओं से पूर्ण वेदवाणी हमारे लिए सुख प्रदान करे ।

६०८. विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ।—२५।२०

सब विद्वान् लोग रक्षा आदि साधनों के साथ इस भवसागर में हमें प्राप्त हों ।

६०६. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः ।—२५।२१

हे विद्वानो ! आप लोगों की कृपा से हम कानों से सदा भद्र वचनों को सुनें ।

६१०. भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।—२५।२१

हे यज्ञमय जीवनवाले विद्वानो ! हम आँखों से कल्याणकारी, भद्र दृश्यों को ही देखें ।

६११. व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।—२५।२१

हम विद्वानों के लिए हितकारक पूर्ण अवस्था, दीर्घायु को अच्छे प्रकार प्राप्त हों ।

६१२. अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु ।—२५।४५

हे राजन् ! अन्याय के समक्ष न झुकनेवाला तू हमें अपराधों से रहित शुद्ध आचार-व्यवहारवाला बना ।

६१३. संज्ञानमस्तु मे ।—२६।१

मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हो ।

६१४. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।—२६।२

मैं कल्याणी वेद वाणी का मनुष्यमात्र के लिए यथावत् उपदेश करूँ ।

६१५. अस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।—२६।३

हे परमेश्वर ! आप हम लोगों में आश्चर्यरूप ज्ञान, धन और यश प्रदान कीजिए ।

६१६. अजस्रं घर्ममीमहे ।—२६।६

हम देदीप्यमान तेज को निरन्तर चाहते हैं ।

६१७. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम ।—२६।७

हम ब्रह्माण्ड के संचालक परमेश्वर की वेदरूपी दोषरहित सुमति में सदा विद्यमान रहें अर्थात् वेद के अनुसार चलें ।

६१८. शोडषी शर्म यच्छंतु ।—२६।१०

सोलह कला[1] पूर्ण परमातमा हमें सुख प्रदान करे ।

६१९. इन्द्रं गीभिर्नवामहे ।—२६।११

हम उपासक परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की वेदवाणियों द्वारा खूब स्तुति करते हैं ।

६२०. अग्नये बृहदर्च विभावसो ।—२६।१२

हे तेजस्विन् ! ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिए खूब अर्चना करो ।

६२१. प्रजां च परि पातु नः ।—२६।१४

हे विद्वन् ! आप उत्तम शिक्षा के द्वारा हमारी प्रजाओं की रक्षा कीजिए ।

६२२. देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ।—२६।१९

विद्वान् लोग हमारे धर्मयुक्त व्यवहार और जीवन-यज्ञ को मर्यादाओं के अनुसार चलाएँ ।

६२३. त्व ँ हि रत्नधा असि ।—२६।२१

हे मानव ! तू ही सद्गुणरूपी रत्नों का धारण करनेवाला है ।

६२४. जुहोत प्र च तिष्ठत ।—२६।२२

हे मनुष्यो ! यज्ञ करो और प्रतिष्ठा को प्राप्त होओ ।

६२५. दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ।—२६।२३

हे विद्वन् ! तू रोगराशक ओषधियों के रस को अपनी जठराग्नि में अच्छी प्रकार धारण कर ।

६२६. सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन ।—२७।१

हे विद्वन् ! तू दिव्य-तेज से सूर्य के समान खूब चमक ।

६२७. विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ।—२७।१

हे विद्वन् ! चारों दिशाओं को न्याययुक्त धर्मज्ञान से प्रकाशित कर, जगमगा दे ।

---

१. प्रश्नोपनिषद् के अनुसार परमातमा की सोलह कलाएँ निम्न हैं—

१. प्राण, २. श्रद्धा, ३. पृथिवी, ४. अप्, ५. तेज, ६. वायु, ७. आकाश, ८. इन्द्रियाँ, ९. मन, १०. अन्न, ११. वीर्य, १२. तप, १३. मन्त्र, १४. कर्म, १५. लोक और १६. नाम ।

९२८. सं चेध्यस्वाग्ने ।—२७।२

हे अग्नि के समान तेजस्वी विद्वन् ! आप दिव्य गुणों से प्रकाशित हूजिए, चमकिए ।

९२९. उच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।—२७।२

हे विद्वन् ! महान् सौभाग्य के लिए उद्यत हूजिए, पुरुषार्थ कीजिए ।

९३०. स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ।—२७।३

हे विद्वान् ! तू प्रमाद न करता हुआ अपने गृहकार्यों में सदा जागरूक, सावधान रह ।

९३१. इहैवाग्ने अधि धारया रयिम् ।—२७।४

हे विद्वन् ! आप इस संसार में, इस जीवन में धन-धान्य को धारण कीजिए ।

९३२. विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्व ।—२७।६

हे विद्वन् ! आप सब दुष्टाचरणों और बुराइयों को मसल दीजिए ।

९३३. परि पाहि नो वृधे ।—२७।७

हे राजन् ! हमारी वृद्धि के लिए सब ओर से हमारी रक्षा कीजिए ।

९३४. वर्धयैनं महते सौभगाय ।—२७।८

हे आचार्य ! आप महान् सौभाग्य, उत्तम लक्षण, चरित्र और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अपने शिष्य को बढ़ाइए ।

९३५. बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्च ।—२७।९

हे ज्ञानिन् ! आप अपने को सब प्रकार के अपराध से मुक्त कीजिए ।

९३६. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवः ।—२७।३६

हे परमेश्वर ! तेरे जैसा तेजस्वी न द्युलोक में है और न ही पृथिवी पर ।

९३७. स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ।—२९।२

हे परमेश्वर ! आप यज्ञ करनेवाले पुरुष को अन्न प्रदान कीजिए ।

९३८. ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन् ।—२९।३

हे शक्तिशालिन् ! आप स्तुति योग्य और नमस्करणीय हैं ।

९३९. आशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।—२९।३

हे घोड़े के तुल्य उत्साही विद्वन् ! आप शीघ्रकारी, वेगवान् और सत्सङ्ग करने के योग्य हैं ।

६४०. द्वारो देवी सुप्रयाणा भवन्तु ।—२९।५

घरों के द्वार रंगों से चमकते हुए और सुखपूर्वक आने-जाने योग्य हों।

६४१. हविरदन्तु देवाः ।—२९।११

विद्वान् लोग ग्राह्य अन्न का भोजन करें।

६४२. सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ।—२९।१३

हे विद्वानो ! सूर्य से शक्ति का निर्माण करो।

६४३. तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन् ।—२९।२२

हे घोड़े के समान शक्तिशालिन् ! तेरा शरीर क्षणभंगुर है, नाशवान् है।

६४४. अर्वन् तव चित्त वात इव ध्रजीमान् ।—२९।२२

हे वीर पुरुष ! तेरे अन्तःकरण की वृत्ति वायु के समान वेगवाली अर्थात् दूरस्थ विषय के तत्त्व को जाननेवाली है।

६४५. देवो देवान्यजसि जातवेदः ।—२९।२५

हे उत्तम बुद्धि को प्राप्त ! विद्वान् हुए आप विद्वानों अथवा उत्तम गुणों को सङ्गत करते हो।

६४६. धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम ।—२९।३९

हम धनुष के द्वारा गौओं, भूमियों को जीतें और धनुष=अस्त्र-शस्त्रों के बल से संग्राम को जीतें।

६४७. धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।—२९।३९

हम धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रों से तीव्र वेगवाली मदमस्त शत्रु-सेना को जीतें।

६४८. धनुः शत्रोरपकामं कृणोति ।—२९।३९

धनुष शत्रु की कामनाओं को नष्ट कर देता है।

६४९. धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ।—२९।३९

हम धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रों से सब दिशा-प्रदिशाओं को जीतें।

६५०. अप शत्रून्विध्यताम् ।—२९।४१

हे शूरवीरो ! शत्रुओं को मार भगाओ।

६५१. विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ।—२९।४५

हम सदा हँसते-मुस्कराते और सुन्दर विचारोंवाले हों।

६५२. शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।—२९।४७

निष्पाप माता-पिता हमारे लिए कल्याणकारी हों।

९५३. पूषा नः पातु दुरितात् ।—२९।४७

पुष्टि करनेवाला परमात्मा हमें दुष्ट अन्यायाचरण से बचाए ।

९५४. माकिर्नो अघश ँ्स ईशत ।—२९।४७

पाप का प्रशंसक चोर हमपर शासन करने में समर्थ न हो ।

९५५. ऋजीते परि वृङ्धि नः ।—२९।४९

हे वैद्य ! तू हमारे शरीर से रोगों को सब प्रकार से पृथक् कर दे ।

९५६. अश्मा भवतु नस्तनूः ।—२९।४९

हमारे शरीर पत्थर के समान दृढ़ हों ।

९५७. अदितिः शर्म यच्छतु ।—२९।४९

पृथिवी=मिट्टी हमें सुख प्रदान करे ।[1]

९५८. अश्वान्त्समत्सु चोदय ।—२९।५०

हे सारथे ! तू घोड़ों को संग्राम में प्रेरित कर ।

९५९. पुमान् पुमा ँ्सं परि पातु विश्वतः ।—२९।५१

मनुष्य मनुष्य की सब प्रकार से रक्षा करे ।

९६०. वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूयाः ।—२९।५२

हे भक्तशिरोमणे ! तू दृढ़, हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ अङ्गोंवाला हो ।

९६१. दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ।—२९।५५

हे नगाड़े के समान गर्जन करनेवाले शूरवीर ! तू शत्रुओं को दूर-से-दूर भगा दे ।

९६२. अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनाः ।—२९।५६

हे नगाड़े के समान गर्जनेवाले सेनापते ! आप कुत्तों के समान शत्रुओं को बुरे प्रकार रुला और मार भगाइए ।

९६३. इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ।—२९।५६

हे शूरवीर ! तू इन्द्र का वज्र है, अतः अपने आपको सदा दृढ़ बनाये रख ।

९६४. अस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ।—२९।५७

हे शत्रुविदारक सेनापते ! हमारे महारथी विजयशील=शत्रुओं को जीतनेवाले हों ।

---

१. इस सूक्ति में मिट्टी-चिकित्सा का बीज विद्यमान है ।

६६५. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।—३०।३

हे सर्वजगदुत्पादक, सर्वसुखदाता परमेश्वर ! आप हमारे सारे दुर्गुण, दुष्टाचारण और दुःखों को दूर कर दीजिए ।

६६६. यद् भद्रं तन्न आ सुव ।—३०।३

हे सकल सुखदाता परमेश्वर ! जो कल्याणकारी धर्मयुक्त आचरण अथवा सुख है, उसे हमें प्राप्त कराइए ।

६६७. पुष्ट्यै गोपालम् ।—३०।११

हे परमेश्वर ! आप अन्न, गोदुग्ध आदि शारीरिक पुष्टि प्रदान करनेवाले पदार्थों की प्राप्ति के लिए गौओं के पालक को उत्पन्न कीजिए ।

६६८. भूत्यै जागरणम् ।—३०।१७

जागना, प्रबोध ऐश्वर्य का कारण है, ऐश्वर्य के लिए है ।

६६९. अभूत्यै स्वप्नम् ।—३०।१७

सोना विनाश के लिए, दरिद्रता के लिए है ।

६७०. अन्तकाय गोघातम् ।—३०।१८

गोघातक को मृत्युदण्ड के लिए सौंपिए, उसे मृत्युदण्ड हो ।

६७१. सहस्रशीर्षा पुरुषः ।—३१।१

सर्वत्र परिपूर्ण सर्वव्यापक विराट् पुरुष जगदीश्वर हजारों सिरवाला= सर्वज्ञ है ।

६७२. ततो विराडजायत ।—३१।५

उस सनातन पूर्ण परमात्मा से विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार उत्पन्न होता है ।

६७३. तस्मादश्वा अजायन्त ।—३१।८

उस पूर्ण परमेश्वर के सामर्थ्य से घोड़े उत्पन्न हुए ।

६७४. तस्माज्जाता अजावयः ।—३१।९

उसी परमेश्वर के सामर्थ्य से बकरी-भेड़ आदि उत्पन्न हुए ।

६७५. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः ।—३१।१६

विद्वान् लोग ज्ञानयज्ञ से, मानसयज्ञ से, सर्वरक्षक पूजनीय परमेश्वर की पूजा करते हैं ।

९७६. **वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् ।—३१।१८**
मैं बड़े-बड़े गुणों से युक्त, महतो महन् सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को जानूँ ।
९७७. **तमेव विदित्वाति मृत्युमेति ।—३१।१८**
उस परमात्मा को जानकर ही मनुष्य मृत्यु को लाँघता है ।
९७८. **तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः ।—३१।१९**
उस सर्वव्यापक परमेश्वर के स्वरूप को ध्यानशील योगिजन सब ओर से देखते हैं ।
९७९. **तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।—३१।१९**
समस्त लोक-लोकान्तर, सारे ब्रह्माण्ड उसी परमेश्वर में स्थित हैं ।
९८०. **नमो रुचाय ब्राह्मये ।—३१।२०**
सर्वत्र प्रकाशमान ब्रह्म के लिए नमस्कार हो ।
९८१. **सर्वलोकं म इषाण ।—३१।२२**
हे परमेश्वर ! मुझे समस्त लोकों का भोग्यसुख प्रदान कर ।
९८२. **न तस्य प्रतिमा अस्ति ।—३२।३**
उस परमेश्वर का कोई नाप, तोल, परिमाण, प्रतिमा नहीं है ।
९८३. **वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत् ।—३२।८**
पण्डित, विद्वान् जन बुद्धि में स्थित नित्य, चेतन ब्रह्म को ज्ञानदृष्टि से देखते हैं ।
९८४. **स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ।—३२।८**
वह महान् परमात्मा प्रजाओं में ताने-बाने के समान ओत-प्रोत है ।
९८५. **स नो बन्धुर्जनिता स विधाता ।—३२।१०**
वह परमात्मा हमारा बन्धु=भाई के समान सहायक, उत्पन्न करनेवाला पिता और कर्मफल-विधाता है ।
९८६. **आत्मनात्मानमभि सं विवेश ।—३२।११**
अपने शुद्धस्वरूप अथवा अन्तःकरण से परमात्मा में सम्यक् प्रवेश करना चाहिए ।
९८७. **सनिं मेधामयासिषम् ।—३२।१३**
मैं सत्यासत्य का विवेक करनेवाली उत्तम बुद्धि को प्राप्त होऊँ ।

९८८. अग्ने मेधाविनं कुरु ।—३२।१४

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप मुझे प्रशंसित मेधावी=धारणवती बुद्धि और धन-धान्य से सम्पन्न कीजिए ।

९८९. मेधां मे वरुणो ददातु ।—३२।१५

सर्वश्रेष्ठ वरणीय परमेश्वर मुझे धारणवती बुद्धि और धन प्रदान करे ।

९९०. मेधां धाता ददातु मे ।—३२।१५

समस्त संसार का धारण करनेवाला परमात्मा मुझे श्रेष्ठ बुद्धि और धन प्रदान करे ।

९९१. मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमाम् ।—३२।१६

विद्वान् लोग मुझे अतिश्रेष्ठ शोभा वा लक्ष्मी प्रदान करें ।

९९२. अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।—३३।३

हे विद्वन् ! आप अपने घर को संगत=सुव्यवस्थित कीजिए । अथवा, हे प्रभो ! यम-नियम आदि से युक्त अपने उपासक को दिव्य एवं निर्मल बना दे ।

९९३. अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय ।—३३।१२

हे ज्ञानिन् ! तू महान् सौभाग्य के लिए उत्साह-सम्पन्न बन, उद्योग कर ।

९९४. शत्रूयतामभितिष्ठा महाँ सि ।—३३।१२

हे राजन् ! विद्वन् ! आप शत्रुता करनेवाले मनुष्यों के तेजों को तिरस्कृत कीजिए ।

९९५. प्रियासः सन्तु सूरयः ।—३३।१४

ज्ञानी जन हम सबके प्रीति-पात्र हों ।

९९६. श्रुधि श्रुत्कर्ण ।—३३।१५

हे प्रार्थियों के वचनों को सुननेवाले राजन् ! हमारी पुकार सुन ।

९९७. त्वं वरुण पश्यसि ।—३३।३२

हे वरणीय परमेश्वर ! आप सब प्राणियों के कर्मों को देखते हैं ।

९९८. सर्वं तदिन्द्र ते वशे ।—३३।३५

हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ! इस संसार में निकट और दूर जो कुछ भी है, वह सब आपके वश में है ।

९९९. बण्महाँ असि सूर्य ।—३३।३९

हे चराचर के अन्तर्यामिन् परमेश्वर ! आप सचमुच महान् हैं ।

१०००. बडादित्य महाँ असि।—३३।३९

हे अविनाशी प्रभो ! आप निश्चय ही अनन्त ज्ञानवान् हैं।

१००१. देव महाँ असि।—३३।३९

हे दिव्य गुणकर्मस्वभाव युक्त परमेश्वर ! आप महान् हैं।

१००२. अ ँ हसः पिपृता निरवद्यात्।—३३।४२

हे विद्वान् लोगो ! आप हमें पाप, अपराध, निन्दनीय वचनों और दुःख से निरन्तर बचाओ।

१००३. देवाः शर्द्धः प्र यन्त।—३३।४८

हे विद्वान् लोगो ! हमारे लिए शरीर और आत्मा का बल प्रदान करो।

१००४. अस्माँ अवन्तु देवाः।—३३।५०

विद्वान् लोग हमारी रक्षा करें।

१००५. अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्राः।—३३।५१

हे यज्ञशील जनो ! आप लोग आज, वर्तमान जीवन में हमारे सम्मुख हूजिए, हमसे विमुख मत रहिए।

१००६. त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य।—३३।५१

हे विद्वानो ! आप हमें हिंसक चोर और व्याघ्र=भेड़िये [क्रोधी, छिपकर आक्रमण करनेवाले मनुष्य] से बचाओ।

१००७. त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः।—३३।५१

हे परोपकारी लोगो ! आप हमें पतनशील संसाररूप कुएँ से बचाओ।

१००८. विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे।—३३।५२

हे राजन् ! प्रजास्थ हम मनुष्यों के लिए सब अन्न और धन प्राप्त हों।

१००९. त्वं तूर्य तरुष्यतः।—३३।६६

हे राजन् ! तू हमारा हनन करनेवाले शत्रुओं को मार।

१०१०. यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नम्।—३३।६८

विद्वानों का यज्ञ सुख को लाता है।

१०११. परि पाहि नो गयम्।—३३।६९

हे राजन् ! आप प्रशंसा के योग्य हमारी सन्तान, धन और घर की सब ओर से रक्षा कीजिए।

१०१२. न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।—३३।७९

हे परमेश्वर ! तेरे जैसा ज्ञानवान् कोई भी देव नहीं है।

१०१३. शेवधिपा अरिः ।—३३।८२

धन से चिपटा रहनेवाला अदानशील मनुष्य समाज का शत्रु है।

१०१४. मा नो मर्धिष्टम् ।—३३।८८

हे राजा-प्रजाजनो ! तुम दोनों हमें मत मारो।

१०१५. प्र देव्येतु सूनृता ।—३३।८९

हमें सत्य लक्षणों से उज्ज्वल और शुभ गुणों से प्रकाशमान वाणी प्राप्त हो।

१०१६. ज्योतिषा बाधते तमः ।—३३।९२

आध्यात्मिक प्रकाश से अविद्यारूपी अन्धकार को हटाया जाता है।

१०१७. देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ।—३३।९५

हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ! विद्वान्, ध्यानशील योगी लोग आपकी मित्रता के लिए यम-नियम आदि का संयम करते हैं।

१०१८. वृत्रं हनति वृत्रहा ।—३३।९६

शत्रुनाशक सेनापति शत्रुओं का संहार करता है। शूरवीर अन्तः-शत्रुओं का नाश करता है।

१०१९. मरुतो ब्रह्मार्चत ।—३३।९६

हे मनुष्यो ! परमात्मा की अर्चना करो।

१०२०. मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।—३४।१

मेरा संकल्प-विकल्पात्मक मन कल्याणकारी धर्म-विषयक इच्छावाला हो। मेरा मन कल्याणकारी संकल्प करनेवाला हो।

१०२१. क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ।—३४।८

हे विद्वन् ! हमें बुद्धि, बल, और चातुर्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित कीजिए।

१०२२. प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ।—३४।१०

हे दिव्यगुणयुक्त नारि ! तू हमारे लिए, हमारे राष्ट्र के लिए श्रेष्ठ सन्तान, सु-नागरिक प्रदान कर।

१०२३. रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।—३४।१३

हे स्तुति के योग्य परमेश्वर ! आप हमारे शरीर, मन और बुद्धि की रक्षा कीजिए।

१०२४. अङ्गिरसो गा अविन्दन् ।—३४।१७

ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष वेद-वाणियों, भूमियों और गौ आदि समृद्धियों को प्राप्त करते हैं।

१०२५. त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ।—३४।२२

हे विद्वन्! तू ज्ञान-ज्योति से अविद्या-अन्धकार को दूर कर।

१०२६. अधि च ब्रूहि देव ।—३४।२७

हे विद्वन्! आप हमें अधिकारपूर्वक उपदेश दीजिए।

१०२७. अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतम् ।—३४।२९

हे अध्यापक और उपदेशक लोगो! तुम दोनों हमारी वाणी को प्रशस्त कर्मोंवाली बनाओ!

१०२८. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्र ँ् हवामहे ।—३४।३४

हम प्रातःकाल की शुभवेला में प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और उत्तम ऐश्वर्य का आह्वान करते हैं।

१०२९. प्रातः सोममुत रुद्र ँ् हुवेम ।—३४।३४

हम प्रातःकाल, सब कार्यों से प्रथम सबके अन्तर्यामी, प्रेरक और पापियों को रुलानेवाले, सर्वरोगनाशक परमात्मा का चिन्तन करते हैं।

१०३०. प्रातर्जितं भगमुग्र ँ् हुवेम ।—३४।३५

हम प्रातःकाल अपने पुरुषार्थ से प्राप्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य को चाहते हैं।

१०३१. वयं देवाना ँ सुमतौ स्याम ।—३४।३७

हम लोग विद्वानों की उत्तम बुद्धि में समस्त ऐश्वर्ययुक्त सदा रहें।

१०३२. वयं भगवन्तः स्याम ।—३४।३८

हम लोग समग्र शोभायुक्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हों। हम सौभाग्यशाली हों।

१०३३. तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति ।—३४।३८

हे समग्र शोभायुक्त परमेश्वर! सब मनुष्य आपको ही पुकारते हैं।

१०३४. स नो भग पुरएता भवेह ।—३४।३८

हे सकलैश्वर्य-प्रदाता परमेश्वर! इस संसार में आप ही हमारे अगुवा=नेता हूजिए।

१०३५. धियं धिय ँ् सीषधाति प्र पूषा ।—३४।४२

पुष्टिकर्त्ता परमेश्वर! हमारी प्रत्येक बुद्धि और कर्म को प्रकृष्टता से सिद्ध करे।

१०३६. जागृवा ँ सः समिन्धते ।—३४।४४

सदा सावधान, जागरूक साधक ही अपनी आत्मा में उस परमात्म-ज्योति को प्रकट करते हैं।

१०३७. ये नः सपत्ना अप ते भवन्तु ।—३४।४६

जो हमारे शत्रु हैं, वे दूर हों, पराजय को प्राप्त हों।

१०३८. विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।—३४।४८

हम लोग जीवन के हेतु विज्ञान तथा दुःखों का वजन करनेवाले अन्न को प्राप्त हों।

१०३९. सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे ।—३४।५५

परमात्मा ने हमारे शरीर में शब्दादि विषयों को प्राप्त करानेवाले, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि=ये सात ऋषि प्रस्थापित किये हैं।

१०४०. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ।—३४।५६

हे वेद के रक्षक ! उठ, सावधान हो [वेद प्रचार में लग] !

१०४१. उप प्र यन्तु मरुतः सुदानवः ।—३४।५६

हे वेदोपदेशक ! मनुष्य उत्तम दानशील होकर तेरे समीप आएँ।

१०४२. इन्द्र प्राशुर्भवा सचा ।—३४।५६

हे विद्वन् ! तू सत्य के सम्बन्ध से उत्तम भोगों का भोक्ता बन।

१०४३. विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवाः ।—३४।५८

जिसकी विद्वान् लोग रक्षा करते हैं, वह सब कल्याणकारी है।

१०४४. अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्नाः ।—३५।१

पर-पीड़क वणिक् लोग यहाँ से, इस राष्ट्र से दूर चले जाएँ। धर्मध्वजी=पाखण्डी यहाँ से, धर्मस्थान से दूर चले जाएँ।

१०४५. अश्वत्थे वो निषदनम् ।—३५।४

हे मनुष्यो ! तुम्हारी स्थिति, कल नहीं रहेगा, [अ+श्व=स्थ] ऐसे अनित्य संसार में है।

१०४६. अप नः शोशुचदघम् ।—३५।६

हे प्रभो ! हमारे पाप और द्वेषों को भस्म कर दे।

१०४७. मा नः प्रजा ँ रीरिषो मोत वीरान् ।—३५।७

हे मृत्यो ! तू हमारी प्रजा और वीर पुरुषों को असमय में ही काल का ग्रास मत बना।

१०४८. शं वातः श ँ् हि ते घृणिः ।—३५।८

हे मानव ! वायु तेरे लिए सुखकारी हो और सूर्य भी तेरे लिए कल्याणकारी हो ।

१०४९. शं ते भवन्त्वग्नयः ।—३५।८

हे मानव ! तेरे लिए अग्नि, विद्युत्, सूर्य आदि अग्नियाँ कल्याणकारक हों ।

१०५०. अन्तरिक्ष ँ् शिवं तुभ्यम् ।—३५।९

हे मनुष्यो ! तुम्हारे लिए अन्तरिक्ष कल्याणकारक हो ।

१०५१. उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।—३५।१०

हे मित्रो ! कटिबद्ध हो जाओ, पुरुषार्थी बनो और संसाररूपी नदी से पार हो जाओ, दुःखों को लाँघ जाओ ।

१०५२. अपाघमप किल्बिषम् ।—३५।११

हे अपामार्ग ! कुपथ-निवारक ! हमसे पाप और अकीर्तिकर कर्मों को दूर करो ।

१०५३. अप दुःष्वप्न्य ँ् सुव ।—३५।११

हे कुत्सित=खोटे मार्ग से वर्जनेवाले ! तू हमारे दुःस्वप्नजन्य दुःखों को हमसे दूर कर दे ।

१०५४. अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ।—३५।१५

हे मनुष्यो ! अकाल मृत्यु को ज्ञान, पुरुषार्थ वा ब्रह्मचर्य आदि से दूर मार भगाओ ।

१०५५. देवेष्वक्रत श्रवः ।—३५ १८

हे मनुष्यो ! विद्वानों में यश प्राप्त करो, विद्वानों में यशस्वी बनो ।

१०५६. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरम् । ३५।१९

मैं कच्चा मांस खानेवाली चिन्तारूपी अग्नि को दूर करता हूँ ।

१०५७. स्योना पृथिवी नो भव ।—३५।२१

हे पृथिवी के समान क्षमाशील नारि ! तू हमारे लिए कल्याणकारिणी हो ।

१०५८. इन्द्रो विश्वस्य राजति ।—३६।८

परमैश्वर्यशाली परमात्मा सारे संसार का शासक है ।

१०५६. शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।—३६।८

परमेश्वर हमारे दोपायों=मनुष्य, भृत्यादि और चौपायों=पशुओं के लिए भी सुखदायी और कल्याणकारी हो ।

१०६०. शन्नो भवत्वर्यमा ।—३६।६

न्यायकारी परमात्मा हमारे लिए सुखदायक हो ।

१०६१. शन्नो वात: पवताम् ।—३६।१०

हे परमेश्वर ! वायु हमारे लिए सुखकारी होकर बहे ।

१०६२. शन्नस्तपतु सूर्य: ।—३६।१०

हे प्रभो ! सूर्य हमारे लिए कल्याणकारी होकर तपे ।

१०६३. अहानि शं भवन्तु न: ।—३६।११

हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से दिन हमारे लिए कल्याणकारी हों ।

१०६४. शन्न इन्द्राग्नी भवताम् ।—३६।११

हे विश्वसंचालक ! आपकी कृपा से विद्युत् और अग्नि हमारे लिए कल्याणकारी हों ।

१०६५. शन्न इन्द्रावरुणा ।—३६।११

प्रभो ! आपके अनुग्रह से विद्युत् और जल हमारे लिए सुखकारी हों ।

१०६६. शन्नो देवीरभिष्टये ।—३६।१२

आनन्दप्रद और सर्वप्रकाश परमात्मा हमारे मनोवाञ्छित फल-प्राप्ति के लिए शान्तिदायक हो ।

१०६७. शंयोरभि स्रवन्तु न: ।—३६।१२

परमात्मा हम पर चारों ओर से सुख की वृष्टि करे ।

१०६८. द्यौ: शान्ति: ।—३६।१७

द्युलोक, मस्तिष्क शान्ति देनेवाला हो ।

१०६९. अन्तरिक्ष ँ शान्ति: ।—३६।१७

अन्तरिक्ष लोक में—हृदय-मन्दिर में शान्ति हो ।

१०७०. पृथिवी शान्ति: ।—३६।१७

पृथिवी पर शान्ति हो, पृथिवी शान्ति देनेवाली हो ।

१०७१. आप: शान्ति: ।—३६।१७

जल शान्ति प्रदान करनेवाले हों ।

१०७२. ओषधयः शान्तिः ।—३६।१७
गेहूँ, जौ, चना आदि ओषधियाँ शान्ति देनेवाली हों ।
१०७३. वनस्पतयः शान्तिः ।—३६।१७
आम, अमरूद, वट, पीपल आदि वनस्पतियाँ शान्ति देनेवाली हों ।
१०७४. विश्वे देवाः शान्तिः ।—३६।१७
समस्त विद्वान् और तेजोमय पदार्थ शान्ति देनेवाले हों ।
१०७५. ब्रह्म शान्तिः ।—३६।१७
चारों वेद, परमेश्वर और अन्न—ये सभी शान्ति देनेवाले हों ।
१०७६. सर्वं ँ शान्तिः ।—३६।१७
सब पदार्थ हमारे लिए शान्तिप्रद हों ।
१०७७. शान्तिरेव शान्तिः ।—३६।१७
शान्ति भी शान्ति देनेवाली हो ।
१०७८. मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।—३६।१८
हे जगदीश्वर ! संसार के सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से सम्यक् देखें ।
१०७९. मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।—३६।१८
मैं संसार के सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से सम्यक् देखूँ ।
१०८०. मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।—३६।१८
हम सब परस्पर एक-दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें ।
१०८१. दृते दृ ँह मा ।—३६।१९
हे अविद्यारूपी अन्धकारक के निवारक जगदीश्वर ! आप मुझे शुभ-कर्मों और धर्मयुक्त व्यवहार में दृढ़ता प्रदान कीजिए ।
१०८२. ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ।—३६।१९
हे प्रभो ! मैं आपके ज्ञानरूप संदर्शन में दीर्घजीवन व्यतीत करूँ ।
१०८३. नमस्ते भगवन्नस्तु ।—३६।२१
हे अनन्त ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! आपको नमस्कार हो ।
१०८४. नो अभयं कुरु ।—३६।२२
हे परमेश्वर ! तू हमें भयरहित कर ।
१०८५. शन्नः कुरु प्रजाभ्यः ।—३६।२२
हे परमेश्वर ! हमारी प्रजाओं के लिए सुख प्रदान कीजिए ।

१०८६. अभयं न पशुभ्यः ।—३६।२२

हे परमेश्वर ! हमारे गौ आदि पशुओं के लिए निर्भयता प्रदान कीजिए ।

१०८७. पश्येम शरदः शतम् ।—३६।२४

हम सौ वर्ष तक परमात्मा का दर्शन करते रहें ।

१०८८. जीवेम शरदः शतम् ।—३६।२४

हम सौ वर्ष तक प्राणों को धारण करें, जीएँ ।

१०८९. शृणुयाम शरदः शतम् ।—३६।२४

हम सौ वर्षों तक शास्त्रों और मङ्गल-वचनों को सुनते रहें ।

१०९०. प्र ब्रवाम शरदः शतम् ।—३६।२४

हम सौ वर्ष तक पढ़ाएँ और उपदेश करते रहें ।

१०९१. अदीनाः स्याम शरदः शतम् ।—३६।२४

हम सौ वर्ष तक स्वतन्त्र, निर्भय और दीनता-रहित होकर जीएं ।

१०९२. अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ।—३७।११

हे विद्वन् ! तू तेजस्वी है, अग्नि की ज्वाला के समान पवित्र है और तपस्वी=धर्म के अनुष्ठान में श्रम करनेवाला है । अथवा हे वीर ! तुम चन्द्रमा की ज्योत्स्ना हो, अग्नि के तैजस् रूप हो और सूर्य की आभा हो ।

१०९३. विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि ।—३७।१२

हे स्त्रि ! तू मुझे सब नष्ट-भ्रष्ट स्वभाववाली व्यभिचारिणियों से बचा । अथवा, हे पृथिवी ! तू मुझे समस्त नाश करनेवाली शत्रु-सेनाओं से सुरक्षित रख ।

१०९४. वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ।—३७।१६

हे विद्वन् ! आप हमें विद्वानों को संगत करनेवाली वाणी निरन्तर प्रदान करो ।

१०९५. अपश्यं गोपाम् ।—३७।१७

मैंने इन्द्रियों के रक्षक जीवात्मा का और जगद्रक्षक परमेश्वर का दर्शन कर लिया है ।

१०९६. घर्म देवो देवान् पाहि ।—३७।१८

हे तेजस्विन् ! तू रक्षक होकर धार्मिक विद्वानों की रक्षा कर ।

१०९७. पिता नोऽसि ।—३७।२०

हे जगदीश्वर ! आप हमारे पालक और रक्षक पिता हैं ।

१०९८. पिता नो बोधि ।—३७।२०

पिता के तुल्य परमेश्वर ! आप हमें बोध प्रदान कीजिए ।

१०९९. मा मा हि ँ सीः ।—३७।२०

हे परमेश्वर ! राजन् ! तू हमें नष्ट मत कर, हमें मत सता ।

११००. पुत्रान् पशून् मयि धेहि ।—३७।२०

हे परमेश्वर ! आप मुझे पवित्र गुण कर्म-स्वभाववाले सन्तान और गौ आदि पशु प्रदान कीजिए ।

११०१. प्रजामस्मासु धेहि ।—३७।२०

हे परमेश्वर ! आप हमें प्रजा=सुसन्तान प्रदान कीजिए ।

११०२. अरिष्टाह ँ सहपत्या भूयासम् ।—३७।२०

हे परमेश्वर ! मैं पीड़ित और हिंसित न होती हुई सदा पति के साथ रहूँ । मैं अपने पति के साथ स्नेहपूर्वक एवं अविच्छिन्न भाव से रहूँ ।

११०३. अदित्यै रास्नासि ।—३८।१

हे स्त्रि ! तू पृथिवी-निवासी मनुष्यों को प्रेमपाश में बांधनेवाली, प्रजाओं को सत्योपदेश करनेवाली, उन्हें सन्मार्ग पर चलानेवाली और दानशीला है ।

११०४. पूषासि घर्माय दीष्व ।—३८।३

हे स्त्रि ! तू भूमि के समान पोषण करनेवाली है, तू सुख पहुँचानेवाले यज्ञ के लिए दान कर ।

११०५. इहैव रातयः सन्तु ।—३८।१३

इस गृहस्थाश्रम में दान के प्रवाह निरन्तर चलते रहें ।

११०६. घर्मासि सुधर्मा ।—३८।१४

तू धर्मात्मा है, अत्यन्त धर्मात्मा है ।

११०७. महाँ असि रोचस्व ।—३८।१७

हे विद्वन् ! आप महात्मा हैं, जीवन में खूब चमकिए, सदा प्रसन्न रहिए ।

११०८. धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ।—३८।१९

हम लोग स्तुत्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए धर्म के अनुकूल चलें ।

११०९. अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ।—३८।२०

हम लोग द्वेषी शत्रुओं, कुटिल जनों और दया-धर्म आदि व्रतरहित मनुष्यों को अपने से पृथक् कर दूर पहुँचाएँ ।

१११०. वाचः सत्यमशीय ।—३९।४

मैं वाणी के सत्य को प्राप्त होऊँ ।

११११. यशः श्रीः श्रयतां मयि ।—३९।४

यश=कीर्ति, शोभा वा ऐश्वर्य मुझ में आश्रित होकर रहें ।

१११२. ईशा वास्यमिदँ सर्वम् ।—४०।१

सर्वशक्तिमान् परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत है ।

१११३. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः ।—४०।१

हे मनुष्यो ! परमेश्वर द्वारा प्रदत्त पदार्थों को त्यागपूर्वक, त्यागभाव से भोगो ।

१११४. मा गृधः ।—४०।१

हे मनुष्यो ! लालच मत करो ।

१११५. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् ।—४०।२

मनुष्य इस संसार में कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करे ।

१११६. न कर्म लिप्यते नरे ।—४०।२

नर में, नर बनकर कर्म करनेवाले मनुष्य में अवैदिक, अधर्मयुक्त कर्मों का लेप नहीं होता ।

१११७. अनेजदेकं मनसो जवीयः ।—४०।४

वह परमात्मा अपरिणामी, अद्वितीय और मन से भी अधिक वेगवान् है ।

१११८. तदेजति तन्नैजति ।—४०।५

वह परमात्मा स्वयं गतिशून्य है परन्तु सारे संसार को गति दे रहा है ।

१११९. तद्दूरे तद्वन्तिके ।—४०।५

वह परमात्मा अधर्मात्माओं से दूर और धर्मात्माओं के अत्यन्त समीप है ।

११२०. तदन्तरस्य सर्वस्य ।—४०।५

वह परमात्मा सब जगत् और जीवों के भीतर भी विद्यमान है ।

११२१. तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।—४०।५

वह परमात्मा सब जगत् के बाहर भी विद्यमान है ।

११२२. स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम् ।—४०।८

वह परमात्मा सर्वव्यापक शीघ्रकारी, शरीर और व्रण=घाव आदि से रहित है ।

११२३. विद्ययामृतमश्नुते ।—४०।१४

विद्या=यथार्थ ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

११२४. वायुरनिलममृतम् ।—४०।१५

आत्मा अभौतिक अतएव नाशरहित है ।

११२५. इदं भस्मान्त ँ् शरीरम् ।—४०।१५

यह शरीर नश्वर, भस्म होनेवाला है ।

११२६. ओ३म् क्रतो स्मर ।—४०।१५

हे कर्मशील जीव ! तू 'ओ३म्' का स्मरण कर ।

११२७. क्लिबे स्मर ।—४०।१५

हे जीव ! अपनी कमज़ोरियों, त्रुटियों का स्मरण कर ।

११२८. कृत ँ् स्मर ।—४०।१५

हे जीव ! अपने किये हुए अच्छे-बुरे कर्मों का स्मरण कर ।

११२९. ओ३म् खं ब्रह्म ।—४०।१७

'ओ३म्' पदवाच्य परमात्मा आकाशवत् व्यापक और सबसे महान् है ।



